योग सिद्धान्तों और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

वर्ष 33 सितम्बर 2000 अंक 6

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
संवाई (आगरा)-283 202

SIDDHYOG
MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्त श्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

❐

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

❐

संयुक्त सम्पादक :
डा० विजय सिंह

❐

प्रबन्ध सम्पादक :
ब्र० राजेशचन्द्र शर्मा
चन्दशेखर 'दिव्य'
आचार्य चन्द्रहास शर्मा
राजेश कुमार श्रीवास्तव
विनोद कुमार शर्मा

एक प्रति	रु०	8-00
वार्षिक शुल्क	रु०	75-00
द्विवार्षिक	रु०	140-00
आजीवन	रु०	750-00

इस अंक में

❐ अमृतकण 2
❐ साकार एवं निराकार उपासना (विशेष लेख) 3
❐ सम्पादकीय 7
❐ जीवन का उद्देश्य
डॉ० छोटेलाल शर्मा 9
❐ ध्यान कैसे करें ?
डॉ० रुद्रदत्त चतुर्वेदी 10
❐ पूर्णयोग
डॉ० केशवाचार्य 14
❐ महाप्रभु श्री रामलाल जी के प्रिय बालक—महात्मा सूखा
राजेश कुमार श्रीवास्तव 18
❐ अनादि महासिद्ध योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज
पूर्ण चन्द्र पन्त शास्त्री 22
❐ स्वास्थ्य चर्चा 27
❐ कविता
वेद प्रकाश शर्मा 32
❐ गुरु-तत्व
पं० केशवदेवजी शर्मा 33
❐ गीता में योग, योगी और युक्त शब्दों के विभिन्न अर्थ
अशोक दिग्विजय 39

❐ ❐ ❐

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

ॐ श्री सिद्धेश्वराय नमः

ॐ सद्गुरु देव परब्रह्मणे नमः

श्री सिद्ध गुफा योग साधक मण्डल कानपुर के वार्षिकोत्सव के उपलक्ष में

भगवान श्री सद्गुरुदेव योगीराज **चन्द्र मोहन जी महाराज** की कृपा से

एवम्

योग योगेश्वर अनन्त महाप्रभू श्री राम लाल जी महाराज

के पावन चरण कमलों में सादर समर्पित

★ षष्ठम् स्वाध्याय योग शिविर ★

दिनांक १९ से २२ अक्टूबर, २००० तक

आदरणीय बन्धुओं,

आपको सूचित करते हुए अपार हर्ष हो रहा है कि सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की कृपा से एक विशाल योग सम्मेलन आई० आई० टी० कम्यूनिटी सेंटर टाइप टू में दिनांक १९ से २२ अक्टूबर, २००० तक आयोजित किया जायगा। इस आयोजन में उच्चकोटि के आधुनिक एवं योगनिष्ठ विद्वानों द्वारा सिद्धयोग पर उत्तमोत्तम प्रवचन प्रयोगात्मक क्रियायें एवं असाध्य रोगों का इलाज योग चिकित्सा द्वारा (योग मुद्रायें, प्राणायाम, कुण्डलनी जागरण, षट्चक्र भेदन एव ध्यान–समाधि) आदि रोचक विषयों पर प्रकाश डाला जायगा। अतः अपने इष्ट–मित्रों, बन्धु बान्धुओं एवं परिवार जनों सहित उपस्थित होकर इस सुअवसर का समुचित लाभ उठायें।

卐 दैनिक कार्य-क्रम 卐

		मौन व्रत, मन्त्र जप एवम् ध्यान	–	५ से ७ बजे तक
प्रातः	–	योग द्वारा असाध्य रोगों की चिकित्सा	–	७ से ८ बजे तक
		संकीर्तन	–	८ से ९ बजे तक
		आरती	–	९ से ९.३० बजे तक
		प्रवचन	–	१० से १२ बजे तक
अपरान्हः	–	मौन व्रत, मन्त्र जप एवम् ध्यान	–	३.३० से ५ बजे तक
सायं	–	प्रवचन	–	५ से ७ बजे तक
		कीर्तन	–	७ से ८ बजे तक
		आरती	–	रात्रि ८.३० बजे तक

निवेदक :- श्री सिद्ध गुफा योग साधक मण्डल, कानपुर

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 33
अंक 6

सितम्बर
2000

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विषदान योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः।।

श्री मद्भागवत १२/१३/१

अर्थात्

ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र और मरुद्गण जिनका दिव्य स्तोत्रों द्वारा स्तवन करते हैं, सामगान करने वाले लोग अंग, पद, क्रम और उपनिषदों के सहित वेदों द्वारा जिनका गान करते हैं, ध्यानमग्न एवं तल्लीन चित्त से योगी जिनका साक्षात्कार करते हैं और जिनका पार सुर और असुर कोई भी नहीं पाते, इन भगवान विष्णु को नमस्कार है।

अमृत कण

उदगादयादित्यो विश्वेन सहसा सह।
द्विषन्तं मह्यं रन्धयन्मो अहं द्विषंते रधम्।।

–ऋग्वेद १/५०/१३

सब मनुष्यों के लिए उचित है कि अनन्त बलयुक्त परमेश्वर से प्रेरित होकर जैसे सूर्य उदित होकर तेज को प्राप्त होता है वैसे ही सब मनुष्य बल को प्राप्त होकर विकास करें, न किसी से द्वेष करें और न किसी को मारें।

* * *

अनित्यानि शरीराणि विभवोनैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्म संग्रह।।

–चाणक्य नीति

हमारा यह शरीर नाशवान है, धन सम्पदा भी आनी जानी है, सदा रहने वाली नहीं है, मृत्यु हमेशा सिर पर मंडराती रहती है, अतः हमारा कर्तव्य है कि धर्म का संग्रह (आचरण) करें।

* * *

आलस्य हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान रिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुर्यं कृत्वा नावसीदति।।

–भर्तृहरि नीतिशतक

आलस्य मनुष्य के शरीर में रहने वाला घोर शत्रु है और उद्योग के समान उनका कोई बन्धु नहीं है क्योंकि उद्योग करने से मनुष्य के पास दुःख और अभाव नहीं आते।

* * *

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुंभु पयोमुखम्।।

–हितोपदेश – ७६

पीठ पीछे काम को बिगाड़ने वाले और प्रत्यक्ष में मीठी बात बोलने वाले व्यक्ति को इस तरह से त्याग देना चाहिये जैसे विष से भरे हुए उस घड़े को त्याग दिया जाता है जिसमें केवल मुख पर ही दूध भरा हुआ होता है।

विशेष लेख

साकार एवं निराकार उपासना

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

गीता के बारहवें अध्याय के प्रारम्भ में ही अर्जुन से भगवान ने एक प्रश्न किया था-

'एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः।।'

अर्जुन को एक शंका हुई थी, उसकी निवृत्ति के लिये ही उन्होंने प्रश्न किया और पूछा- कुछ लोग आप के सगुण रूप का चिन्तन, ध्यान एवं उपासना करते हैं और दूसरे कुछ ऐसे हैं जो निराकार अव्यक्त निर्गुण की उपासना करते हैं उनमें आप को कौन से अधिक प्यारे लगते हैं। इनमें से किसका दर्जा ठीक है ? इस शंका का समाधान करते हुये भगवान् ने उत्तर दिया-

'मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः।।'

अर्थात् जो मुझ में निरन्तर मन लगाये मेरी उपासना करते हैं वह मुझे प्यारे हैं। जो जितेन्द्रिय होकर प्राणी मात्र का हित चाहते हुये अव्यक्त की, निराकार की उपासना करते हैं वह भी मुझे ही प्राप्त होते हैं। किन्तु- **''अव्यक्ता हि गतिर्दुखं देहवद्भिरवाप्यते''** देह धारियों से अव्यक्त की उपासना अत्यन्त कठिन है। इस बात को ध्यान से समझो। जो निर्गुण चेतन का ध्यान करते हैं- क्या ध्यान करेंगे, जो निर्गुण है, आकार-रहित है, मन उसका क्या चिन्तन करेगा। मन ने उसका कोई रूप नहीं देखा, त्वगेन्द्रिय ने स्पर्श नहीं किया। मन तो आकृति विशेष का चिन्तन करता है, शब्द या नाद का चिन्तन करता है, रस का चिन्तन करता है। निराकार में तो न शब्द है, न स्पर्श है, न रूप है और न ही गन्ध है। उपनिषद् प्रमाण देते हैं-

'यन्मनुसा न मनुते येनाहुर्मनोमतम् ।
तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।।'

जिसका मन से मनन नहीं किया जा सकता, मन जिसकी ताकत से मनन करने वाला होता है वह ही ब्रह्म है। यह नहीं जिसकी तुम उपासना कर रहे हो।

'यच्चक्षुषान पश्यति येन चक्षूंषी पश्यन्ति।
तदेव त्वं ब्रह्म विद्धि नेदम यदिदमुपासते।'

अर्थात् जिसको आँखों से नहीं देखा जा सकता, जिसकी ताकत से आँखे देखने वाली होती है, वह ही ब्रह्म है, यह नहीं जिसकी तुम उपासना कर रहे हो !

'यत्श्रोत्रेण न श्रृणोति येन श्रोत्राणि श्रृण्वन्ति'

जो कानों से नहीं सुना जा सकता, जिसकी ताकत से कान सुनने वाले होते हैं वही ब्रह्म है, यह

नहीं जिसकी तुम उपासना कर रहे हो। कहने का अभिप्राय यह है जो आँखों से परे, रूप, रस आदि से परे हैं उस अव्यक्त की उपासना कठिन है। किन्तु जो श्रद्धा युक्त होकर मेरा चिन्तन करते हैं, वे मुझे प्रिय हैं। श्री कृष्ण तो नित्य सत्व हैं, परात्पर हैं, वहाँ पर रस, रूप, गन्ध आदि का नामो निशान भी नहीं है। फिर साकार की उपासना वाले युक्ततम क्यों हुये। इसका एक कारण है कि अव्यक्त की उपासना देह धारियों के लिये अप्राप्य है। कोई व्यक्ति यह सोचे कि **''ध्यान निर्विषयं मनः''** मन को विषय रहित कर दो, तो ध्यान हो जायेगा। **''न किञ्चिदपि चिन्तयेत''**। किन्तु इस में भी धारणा करनी पड़ेगी कि मुझे कुछ चिन्तन नहीं करना है, वह अपने मन को भुलाने की चेष्टा करेगा। आवश्यकता वहीं पड़ी अर्थात् कुछ न कुछ करना तो पड़ा ही पड़ा। पड़े-पड़े तो उस अव्यक्त चेतन की ओर भी नहीं जा सकते। किन्तु क्या भगवान् कृष्ण को उन्हें प्रेम करने वाले ही प्यारे लगते हैं ? वे अव्यक्त चेतन हैं। सारी दुनियाँ के अन्दर जिस नाम रूप से उसकी कोई उपासना करता है, वह उन्हीं को प्राप्त होता है-

'यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्य अचलाम् श्रद्धां तामेव विद्धाम्यहम्।'

जो-जो जिस-जिस शरीर की श्रद्धापूर्वक उपासना करता है भगवान उन-उन में ही उनकी श्रद्धा बढ़ा देते हैं। इस प्रकार से वे एक प्रकार से उन्हीं की ही उपासना करते हैं। किन्तु सगुण उपासना को भगवान ने महत्व दिया है। योग दर्शन इसकी गवाही देता है। योग दर्शन में समाधि प्राप्ति के कई उपाय बतलाये हैं किन्तु उनमें एक खास उपाय बतलाया है-**''बीत राग विषयं वा चित्तम्''** ! जो अपने मन, बुद्धि, चित्त अहंकार को वीतरागी पुरुषों के मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार में लय कर देते हैं, वे समाधि को प्राप्त हो जाते हैं। देखो ! दो साधर्म्य वाली वस्तु ही मिला करती है। पानी में पानी मिल सकता है, दूध में दूध मिल जाता है, आग पानी में नहीं मिल सकती। वैधर्म्य वाली वस्तुयें आपस में नहीं मिलती। इसलिये मन में 'मन' मिल सकता है, बुद्धि में बुद्धि मिल सकती है, अहंकार में अहंकार मिल सकता है ! इसलिये भगवान् ने बारहवें अध्याय में अर्जुन से कहा है-

'मय्येव मन आधत्स्व, म यि बुद्धिं निवेशय।'

''मे मनसि मन आधत्स्व, मयि बुद्धिं निवेशय - मम बुद्धौ बुद्धिम् प्रवेशय।'' मेरे मन के अन्दर अपना मन मिला लो, मेरी बुद्धि में अपनी बुद्धि को मिला लो। इससे क्या होगा ? **निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः।** मन बुद्धि को मेरे मन बुद्धि में मिला लेने पर तू मुझ में ही मिल जायेगा-इसमें कोई शंका की बात नहीं। झगड़ा तो मन बुद्धि का है। **''ईश्वर अंश जीव अविनाशी''** अथवा **''ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः''** के हिसाब से जीव तो ईश्वर का ही अंश है, जैसे कपड़े का यह धागा कपड़े का अंश है। इसका इससे अलग अस्तित्व नहीं है। अंश अंशी का अभेद सम्बन्ध होता है। अंशी के अन्दर अंश जा सकता है। भगवान् के नाम रूप के अन्दर आकर्षण है। हमारा मन चाहता है श्री कृष्ण में मिल जायें, कान चाहते हैं श्री कृष्ण चन्द्र की बाँसुरी सुन लें। हृदय चाहता है कृष्ण से लिपट चिपट जायें।

मैं तुम्हें बता रहा था **''वीत राग विषयं वा चित्तम्''** वीत रागी पुरुषों के मन में मन और बुद्धि

में बुद्धि मिला लेने पर क्या होता है ? ऐसा करने से करी कराई कमाई मिलती है। यदि हम योगियाना कोर्स को तय करने लगें तो पहले इन्द्रियों का साक्षात्कार करना पड़ेगा, फिर मन का साक्षात्कार करना पड़ेगा, फिर बुद्धि का साक्षात्कार करना पड़ेगा, फिर आत्म दर्शन करें यह तो है साधना का क्रम। किन्तु यदि कोई वीतरागी पुरुषों के मन में मन और बुद्धि में बुद्धि मिला देता है तो ध्यान करने वाले की भी वही स्थिति बनती है, जिसका हम ध्यान कर रहे हैं। देखो ! भगवान् शिव यूँ बैठे हैं समाधि में, उनकी बिल्कुल निर्बीज समाधि है। इसी प्रकार से कोई भगवान् कृष्ण का ध्यान करेगा तो उसे भगवान शिव की अथवा भगवान कृष्ण की शक्तियाँ साथ देने लगेंगी। उसको सम्प्रज्ञात समाधि में पहले तो यह दीखेगा–

"मैं गणेश हूँ। मैं शिव हूँ अथवा मैं कृष्ण हूँ। "किन्तु समाधि में जब निरन्तर यह देखते चले जाते हैं तो फिर वे यह देखते हैं वहाँ मेरी पूजा हो रही है। वहाँ मुझ पर जल चढ़ाया जा रहा है। वहाँ मेरे भक्त पर आपत्ति आ गई, उसकी रक्षा करनी है, यह सब उसको अनुभव होता है। उसको यह अनुभव नहीं होता कि "मैं शंकर जी का ध्यान कर रहा हूँ" उसको अनुभव होता है, मैं ही शिव हूँ। मैंने तुम्हें एक घटना बताई थी श्री प्रभु जी नैपाल हिमालय में रहते थे। वहाँ पर भगवान शिव के किसी भक्त को नरामिष भोजी अघोरी ने पकड़ लिया। उस भक्त ने "शिव" "शिव" कह कर भगवान शिव को पुकारा। हमारे दादा गुरु महाप्रभु जी सदा शिव में लय रहते हैं। प्रभु जी भी वैसे ही लय रहते हैं। जब ऐसा "शिव-शिव" पुकारा तो श्री प्रभु जी के कान में आवाज़ पड़ी। वे लोग क्षण में सुन लेते हैं और तत्काल पहुँच जाते हैं। श्री प्रभु जी ने अघोरी से कहा–छोड़ दे, हमारे बच्चे को ! नहीं तो, तुझे अभी खाली करता हूँ। अघोरी ने उनके दिव्य तेज को देख कर उस भक्त को छोड़ दिया। मतलब यह है वे तो गुणातीत हैं, किन्तु यदि कोई लीन रहने वाले योगी का चिन्तन करता है तो उनको उसका आभास अवश्य होता है। इसलिये अखिलात्मा भगवान् ने अव्यक्त के चिन्तन की अपेक्षा अपने नाम रूप का चिन्तन श्रेष्ठ माना। क्योंकि, उनके नाम रूप के अन्दर हमारा बुद्धि और मन जल्दी जा सकता है। संसारी व्यक्तियों का चिन्तन हमारे जन्म-मरण का कारण होता है। किन्तु श्री कृष्ण का चिन्तन, भगवान शिव का चिन्तन, श्री प्रभु जी का चिन्तन, ये चिन्तन ऐसे हैं जो हमें सीधे मुक्तिद्वार तक ले आयेंगे। ये वीतरागी महापुरुष हैं। ये अमनस्क होते हैं। फिर भी अपने चिन्तन करने वालों का उन्हें ज्ञान होता रहता है। एक बार श्री प्रभु जी ऋषिकेश में रह रहे थे मैंने उनसे कहा– प्रभु जी ! वृन्दावन में एक भक्त है। श्री कृष्ण में उसका बड़ा प्रेम है। वह सारा दिन एक ही बात रटता रहता है "ता-ता, मैं वारी जाऊँ, ता ता मैं वारी जाऊँ।" श्री प्रभु जी ने पूछा कैसे करता है ? मैंने फिर बताया। श्री प्रभु जी ने दस बारह बार इस को सुना फिर प्रभु जी ने कहा-"उसका प्रेम ठीक है। ठीक है भई उसका प्रेम।" फिर मैंने देखा वृन्दावन में उसकी जो मदद हुई वह विलक्षण थी। उसका ता ता मैं वारी जाऊँ तो बन्द हो गया और वह ध्यान में ही बैठा रहता। वीतराग पुरुषों की कथायें सुननी चाहिये। इसलिये हम तुम्हें श्री प्रभु जी की कथायें सुनाते हैं श्री कृष्ण चन्द्र की कथायें सुनाते हैं। हमारे भारत वर्ष में कथायें कहने का रिवाज है। हम श्री प्रभु जी का चित्र तुम्हारे सामने रखते हैं, वह इसलिये कि श्री प्रभु जी के स्वरूप को देखकर कौन संस्कारी बच्चा आ जाये और उसके पूर्व संस्कार

जागृत हो जाये। हमने भी श्री प्रभु जी के चित्र के प्रथम बार दर्शन किये थे, तो ऐसा लगा कि इनसे मेरा जन्म जन्मान्तर का सम्बन्ध है और ये मेरे पिता हैं। इसके पश्चात् ध्यान में उनके दर्शन तथा पानी पिलाने की आज्ञा आदि-आदि बातों का भी स्मरण हो गया। जानते हो श्री प्रभु जी के स्वरूप में कितनी ताकत है ? एक बार मद्रास की रानी पद्मावती जो नर सिंह मूर्ति जी की शिष्या थी, काम कोटि शंकराचार्य जी के पास गई। श्री प्रभु जी के चित्र को उनके पास ले गई। कहने लगी-महाराज ! यह हमारे सद्गुरु देव का चित्र है। ये कैसे है ? वे देखकर कहने लगे-**''नारायण स्वयं''** ये स्वयं नारायण हैं। रानी ने पूछा-''महाराज, इनकी शक्ति कितनी है ?'' उन्होंने कहा- **''इनकी शक्ति का क्या अंदाजा ?''** उनके इस तस्वीर में ही हजारों को एक साथ मुक्ति देने की ताकत है। ''क्यों आयी यह ताकत!'' यह है-**''वीतराग विषयं वा चित्तम''** का सिद्धान्त। वीतरागियों के मन में मन बुद्धि में बुद्धि लय करने पर समाधि हो जाती है यह मैंने तुम्हें पहले बतला दिया है। हम तुम्हें श्री प्रभु जी के चरित्र सुनाया करते हैं क्योंकि वे सद्गुरु हैं। सद्गुरु कौन हुआ करते हैं ? **'यत्रावच्छेदनार्थ कालो न उपावर्तते'** जहाँ पर काल नहीं पहुँच पाता, वह सद्गुरु सत्ता है। जिसके भय से अग्नि तपती है, सूर्य चमकता है, वायु बहती है, वह सत्ता ही सद्गुरु सत्ता है। यदि तुम भगवान् की कथायें सुनते हो, तो यह भी बहुत उत्तम बात है। इससे भी तुम बहुत पुण्य कमा लेते हो। जितनी देर तक कथा सुनते हो तुम्हारा मन भगवान के चरणों में ही लगा रहता है। तो यह समय का सबसे बड़ा सदुपयोग है। कथा-संकीर्तन सुनने से बाह्य धारणा तो बन ही जाती है। इसके बाद ध्यान में बैठकर अपने इष्ट का चिन्तन करना चाहिये। सतोगुण को बढ़ाना चाहिये। इससे अन्तः प्रकाश होता है। रजोगुण तमोगुण से बीमारी आती है। जंगलों में रहने वाले तपस्वी स्वस्थ रहा करते हैं। मन्त्र जाप व ध्यान से मन में तेजस परमाणुओं का प्रवाह रहता है। मन्त्र जाप से शीघ्र ही सतोगुण का उदय होता है। तुम्हें जो मन्त्र मिला है, यह काल भक्षिणी अजपा गायत्री है। बचपन में हमें वृन्दावन में एक महात्मा मिले थे। वे कहते थे- छः माह इस अजपा साधना से हम सिद्ध हो गये हैं। बात ठीक भी है ऐसा विधान भी है साढ़े तीन करोड़ जाप किया जावे तो सकल सिद्धियाँ उपस्थित हो जाती हैं। यदि गुरुदेव अन्तराय हटा दें तो सिद्धियाँ काम करने लग जाती हैं। योगी साधक का संकल्प ही सब जगह काम करने लग जाता है। जहाँ घरों में श्री प्रभु जी की आरती होती है, वहाँ कोई कुप्रभाव नहीं होता। यदि कोई कुप्रभाव करता है, तो करने वाले का ही अनिष्ट होता है। स्त्री जाति में यदि सुधार हो जाये तो सुसंस्कृत सन्तति होती है। महिला सत्संग का यही उद्देश्य है। पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं में कम से कम छः गुणा श्रद्धा अधिक होती है। स्त्रियों के द्वारा घर में बच्चों का सुधार हुआ करता है। अस्तु ! मेरे कहने का अभिप्राय वीतराग पुरुषों में अपने मन को लगाओ। उनकी कथायें सुनो- दिव्य चरित्र सुनो। इस प्रकार से श्रद्धा को बढ़ाते-बढ़ाते योग विधि से अपने मन और बुद्धि को उनमें लय करते चले जाओ उनके ध्यान से लयता चट पट होती है। यदि वे ध्यान में दीखने लग जाते हैं तो **''यं यं चिन्तयते कामं तं तं आप्नोति निश्चितम्''** साधक की सभी कामनायें संकल्प मात्र से पूरी हो जाती हैं इसलिये अपने आप को योग परायण बनाओ। जो ऐसा करेंगे श्री प्रभु जी की कृपा होगी भला होगा।

※※※

असूया : साधक का घातक प्रबल शत्रु

कलिकाल में तमोगुण और रजोगुण की प्रबलता के कारण प्राणियों में काम-क्रोध, लोभ, अहंकार, ईर्ष्या आदि वृत्तियाँ स्वभाव से ही अधिक हैं। हर मनुष्य इनमें से किसी न किसी एक का शिकार बना ही रहता है। कारण इसकी अविद्या है। अविद्या के कारण प्राणियों में राग-द्वेष रहा करता है। काम-क्रोध तथा लोभादि सभी राग और द्वेष मूलक होते हैं। राग-द्वेष मूलक काम और क्रोध को भगवान ने गीता में साधक के दो महान लुटेरे बताया है। ये साधक के योग साधना से अर्जित धन को लूट लेते हैं। लोभ भी राग नामक क्लेश से उत्पन्न होता है। लोभ-वृत्ति के आ जाने पर व्यक्ति हत्यादि घोर से घोर पाप कर डालता है। इसीलिये इसे मनुष्य के जीवन में महारिपु कहा जाता है। सभी दुःखों का मूल लोभ है तथा पाप का कारण होने से यह दुःखदायी तथा प्राणनाशक है-

लोभात् त्यजन्ति धर्मं वै कुल धर्मं तथैव हि
मातरं भ्रातरं हन्ति पितरं बान्धवं तथा।

अर्थात् लोभग्रस्त हो जाने पर मनुष्य धर्म को त्याग देता है तथा अपनी माता, पिता, भाई आदि अन्य बान्धवों को भी लोभी व्यक्ति मार देने में संकोच नहीं करता। काम-क्रोध, लोभ एवं अहंकार की भाँति ही मनुष्य के अन्तःकरण में रहने वाला एक और शत्रु है-**असूया**। असूया का अर्थ है पर-दोष दर्शन या निन्दा। परदोष दर्शन सामान्य व्यक्ति का स्वभाव होता है। दूसरे के दोषों का बखान करते हुये व्यक्ति अपने को गौरवान्वित समझता है किन्तु उसे यह याद नहीं रहता कि उसके अन्दर भी दोषों का ढेर पड़ा हुआ है। परदोष दर्शन की वृत्ति जब दृढ़ता पकड़ लेती है तो व्यक्ति महापुरुषों में भी कमियाँ निकालने लगता है। वह भगवान की भी निन्दा करता है। निन्दक व्यक्ति भगवान को प्यारा नहीं होता। गीता के अन्तिम श्लोकों में भगवान ने अर्जुन से कहा-"**अर्जुन ! हम दोनों का संवाद रूप यह अमृत वचन तुम्हें उन लोगों को कभी नहीं सुनाना है जो मेरे निन्दक हों, जो मुझ में भी दोष दृष्टि रखने वाले हों। किन्तु श्रद्धालु तथा असूया रहित व्यक्ति को इसे अवश्य सुनाना चाहिये।**" निन्दा और चुगली साधक के लिये प्राणघातक शत्रु कहे गये हैं।

योग-साधना से शक्ति अर्जित करना तो सरल है किन्तु उस शक्ति को आत्मसात करके उसे आत्मदर्शन के लिये प्रयोग करना कठिन बात है। असूया आदि इन दोषों को छिद्र की संज्ञा दी जाती है। जिस प्रकार मशक अथवा घड़े में बन गये छोटे से छिद्र में से सारा पानी बाहर निकल जाया करता है उसी प्रकार क्रोध-निन्दा, चुगली आदि भी साधक के जीवन में छिद्र रूप बनकर उसे शक्ति विहीन कर दिया करते हैं। इन दोषों से मनुष्य की आयु भी क्षीण होती है, प्राण क्षीण होते हैं, मन कमजोर होने से संकल्प शक्ति का भी ह्रास हो जाता है। पर-निन्दा से मनुष्य दूसरे का चिन्तन

करता है और इस प्रक्रिया में दूसरे के दोषों को अपने अन्दर ले लेता है। यही वे छिद्र होते हैं जिनके रहने पर परम गुरुदेव जी कहा करते थे **'भौंडे मिले पर चौंदे मिले'**। साधक तो मिले किन्तु उनका मन दोषों से युक्त ! इसी से साधक योग की ऊँचाईयों पर पहुँचा हुआ भी नीचे गिर जाता है। असूयावान व्यक्ति दूसरे के गुणों को भी दोष रूप में ही देखता है। पर-निन्दा, चुगली आदि करने से दूसरे के मन को कष्ट पहुँचाने के कारण हिंसा हो जाया करती है। इस हिंसा का भी फल भोगना पड़ता है। जिसकी निन्दादि कर रहे हैं यदि वह आत्मवान योगी है तो यह फल और भी भारी पड़ता है। इन्हीं कुवृत्तियों के रहते ही मनुष्य अहिंसक नहीं बन पाता। कोई भले ही यह सोचता रहे कि मैं किसी को मारता नहीं हूँ, इसलिये मैं हिंसा नहीं करता हूँ। किन्तु किसी के मन को ठेस पहुँचाना बहुत भारी हिंसा होती है, जिसका व्यक्ति को किसी न किसी रूप में हिसाब चुकाना पड़ता है। महात्मा गाँधी में सत्य, अहिंसा एवं ब्रह्मचर्य की तीन शक्तियाँ थीं। जिनके कारण सारा संसार उनके सामने नतमस्तक रहा है। वे कहा करते थे अहिंसा में वह शक्ति है जिसके आगे बड़ी से बड़ी हिंसा की शक्ति झुक जाया करती है।'' अहिंसा की प्रतिष्ठा का फल योग में सर्वविदित है। व्यवहार में मनुष्य से मानसिक हिंसा होती रहती है इसीलिये वह पूर्णरूपेण अहिंसक नहीं कहला सकता।

योग-साधना में भगवान पतंजलि जी ने इसीलिये सर्वप्रथम यम-नियमों का विधान बनाया है। गुरुदेव जी भी कहा करते थे 'यम-नियमों की साधना किये बिना व सद्गुरु के थपेड़े खाये बिना चाहे कोई छोटी-मोटी सिद्धियाँ भले पा जाये किन्तु योग में पूर्णता नहीं पाया करता।

काम-क्रोध, अहंकार, परनिन्दा, चुगली आदि मानस रोग कहलाते हैं इन रोगों का प्रशमन योग से ही संभव है। यम-नियमों की साधना एवं ध्यान योग का अभ्यास इन रोगों को दूर करने के अचूक उपाय हैं। सद्गुरु के चिन्तन, ध्यान एवं सेवा से भी यह रोग दूर होते हैं। ये रोग ही नये क्लिष्ट संस्कारों को उत्पन्न करते हैं जिससे भवजाल दृढ़ होता चला जाता है और मनुष्य दुःखों से निरन्तर घिरता चला जाता है। योग साधना का लक्ष्य है अविद्या एवं तज्जन्य कुत्सित संस्कारों का उन्मूलन करना। जब तक अविद्या का उच्छेदन नहीं हो जाता, तब तक योगी की साधना चलती रहती है। अन्तःकरण में अविद्या के विद्यमान रहने पर ही काम, क्रोध, लोभ, मात्सर्य आदि वृत्तियाँ समुद्भूत होती रहती हैं।

अतः साधक को चाहिये कि यदि वह योग के मार्ग पर निर्विघ्न सफलतापूर्वक चलना चाहता है तो यम-नियमों का पालन करते हुये अपने मानसिक रोग एवं विकारों का शमन करने का प्रयत्न करता रहे। योग ही एक ऐसा अमर उपाय ऋषियों ने मानव को दिया है जिससे वह इन मानस रोगों का समूलोन्मूलन कर सकता है; अन्यथा भौतिकवादी एवं प्रतियोगितावादी इस युग में व्यक्ति बाहर से कितनी ही उन्नति कर ले भीतर से खोखला ही रहेगा। जिसका परिणाम होगा दुःख, निराशा, अशान्ति एवं नीरसता का सर्वत्र साम्राज्य। इसलिये व्यक्ति को योग की शरण लेना चाहिये क्योंकि उस में ही सब प्रकार की पूर्णता देने की सामर्थ्य है।

***

जीवन का उद्देश्य

डॉ. छोटेलाल शर्मा 'नागेन्द्र' रामपुर

गुरू सम कौन जगत हितकारी
जग में एक मात्र अविकारी।।-

मंगल- धाम- सुगुरु -गुन-गाथा,
जीवन में जो भी गा लेता।
समता बुद्धि उसे मिल जाती,
जीवन में सब कुछ पा लेता।।

संकट की आँधी थम जाती,
चिन्ता-चिता कहीं बुझ जाती।।
सदा एक सी जलने वाली,
उर-दीपक जग जाती बाती।।

मेधावृती परम सुखकारी।
गुरु सम कौन जगत हितकारी।।

बिना कृपा-जल राशि मिले ही,
निरानन्द जीवन रहता है।
मिलता नहीं सहारा जन को,
अवलम्बन फिरता गहता है।।

सब तज सुगुरु शरण में जाना,
जीवन का उद्देश्य मात्र हो।
गुरु की कृपा दृष्टि वर पाना,
यदि कहलाने योग्य पात्र हो।।

गुरू सम कौन प्रकट भय हारी।
गुरू सम कौन जगत हितकारी।।

ध्यान कैसे करें ?

डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, रामपुर

आज का युग भौतिकता का युग है। जीवन की रफ्तार तेज है और आपाधापी मची हुई है। ऐसे में तनाव और अन्य अनेक मानसिक बीमारियों का जन्म हो रहा है। नींद न आना सामान्य बात हो गई है। ट्रैंक्वलाइजर और दर्द निवारक गोलियों की माँग बढ़ रही है। वैसे भारतीय योग दर्शन में तन और मन स्वस्थ रखने के लिए अनेक साधन और उपचार बताये गये हैं, परन्तु विदेशी विद्वानों द्वारा इनकी महत्ता स्वीकार किये जाने के उपरान्त योगा (योग नहीं) के नाम से विख्यात अपनी ही वस्तु आयातित होकर आने पर हमने उसके महत्व को स्वीकार कर लिया है।

चूँकि ध्यान की महत्ता पर इतना लिखा जा चुका है कि उस पर लिखना पुनरावृत्ति होगी। अत: इस लेख की केन्द्रीय विषयवस्तु (सेंट्रल थीम) ध्यान की विधि अथवा प्रक्रिया है तथा उन छोटी-मोटी बाधाओं का वर्णन भी जिनके कारण इस प्रक्रिया में व्यवधान और अन्तराल आता है अथवा यह शुभ और लाभप्रद कार्य छूट जाता है। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति अच्छे गुरु के संपर्क में नहीं आ पाता। अत: इस लेख का उद्देश्य उन व्यक्तियों तक अपनी बात पहुँचाना है।

सर्वप्रथम यह बात जान लेनी होगी कि जो कुछ करना है आप ही को करना है। गुरुदेव, लेख अथवा दूरदर्शन आपको प्रक्रिया बता सकते हैं, निर्देशन दे सकते हैं। अच्छे कामों को प्रारंभ करने और बुरे कामों को छोड़ने में **''आज''** का बहुत महत्व है। हम कल से अच्छा काम करने और बुरा काम छोड़ने की इच्छा रखते हैं, परन्तु किसी न किसी बहाने कल नहीं आता। अत: उठें और **''आज''** ही से यह शुभ कार्य प्रारम्भ कर दें। रामचरित मानस में प्रसंग आता है कि जब भगवान श्री राम वनवास से लौटकर आये तो उनके राज्याभिषेक के मुहूर्त शोधन की चर्चा हुई। वहाँ एक चौपाई है- **''सुदिन सुमंगल है तबहि, जब राम होंय युवराज''** अत: शुभदिन वही है जिस दिन आप ध्यान में बैठना प्रारम्भ कर दें। चूँकि ध्यान, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, एक आदत होगी-एक नियम होगा अत: उसके निर्माण को कुछ पूर्व भूमिकायें भी होंगी जो शारीरिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सहायक होंगी। यदि आप इच्छुक हैं कि यह शुभ कार्य करेंगे तो प्रतिदिन रात्रि में अगले दिन की तैयारी (कहाँ क्या रखा है) कर लें ताकि सुबह हड़बड़ी और तद्जनित तनाव न हो। सुबह नैत्यिक कर्मों से निवृत होकर अपने इष्टदेव, गुरुदेव या किसी प्रख्यात संत के चित्र का पूजन कीजिए, दीपक और धूप जलाइये। प्रश्न उठता है कि इनकी क्या आवश्यता है ? मन चंचल है इसे एकदम नहीं मोड़ा जा सकता है। अत: चित्र पूजन का महत्व है। रोली चंदन लगाने, श्लोक-भजन पढ़ने से आपके मन का झुकाव बाहरी पदार्थों से हटकर उधर को उन्मुख होगा। ध्यान केन्द्रित करने के लिए प्रारम्भ में किसी वस्तु (आब्जेक्ट) की आवश्यकता होती है। अत: चित्र ! पुन: प्रश्न उठता है कि

भगवान या संत का चित्र क्यों ? यदि आप शत्रु या दुष्ट व्यक्ति का चित्र लगा लेंगे और उस पर ध्यान केन्द्रित करेंगे तो आर्त और रौद्र विचार आवेंगे जो सुख के बजाय दुख देंगे। ज्ञानार्णव २३, पृष्ठ ४१४, श्लोक १८-१९ में कहा गया है:-

आत् रौद्र विकल्पेन, दुर्ध्यान देहिनां द्विधा।

द्विधा प्रशस्त मप्युक्तं, धर्म शुक्ल विकल्पत:।। १८

स्यातां तत्रार्तरौद्रे द्वे दुर्ध्यानेऽत्यन्त दुःखदे।

धर्म शुक्ले ततोऽन्ये, द्वे जन्म सम्बन्ध शुद्धि दे।। १९

अत: आवश्यक है कि चित्र किसी उच्च गुण वाले व्यक्ति का हो अथवा भोला व्यक्ति जिसे आप प्रेम करते हो। पूज्य गुरुदेव कहा करते थे कि घर के छोटे बच्चे का, प्रारम्भ में, ध्यान किया जा सकता है। पुष्प और अगरबत्ती सुगंधित वातावरण प्रदान कर ध्यान में सहायक होती। दीपक की ज्योति (लौ) ध्यान केन्द्रित करने में सहायता प्रदान करेगी।

इन सबके उपरान्त कपड़े या ऊन के आसन पर बैठिये। आसन का अर्थ है-आस न, अर्थात् जहाँ प्रभु प्राप्ति के सिवाय कोई आस यानी इच्छा न हो। धरती पर बैठने से अर्जित शक्ति भूमि में समा जाती है। अत: कपड़े आदि के आसन पर बैठना उचित होगा। तदुपरान्त रीढ़ की हड्डी सीधी करके बैठना होगा। इसके लिए सिद्धासन, पद्मासन या सुखासन चुन लें। आसन सहज और सुखकर होना चाहिए। गीता में कहा गया है-

समं काय शिरोग्रीव धारयन्नचलं स्थिर:।

संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चावलोकयन।। (६-१३)

अर्थात्-काया, सिर और गर्दन को समान और अचल धारण किये हुए दृढ़ होकर अपनी नासिका के अग्रभाग को देखें तथा अन्य दिशाओं को न देखता हुआ ध्यान करें। बैठते समय दाहिना हाथ गोद में और उसके ऊपर बाँये हाथ की हथेली रखें। फिर तीन बार प्राणायाम करे अर्थात् दाहिने स्वर से सांस खींचकर थोड़ा रोके और बांये से छोड़े और बांये से खींचकर दाहिने से छोड़े। यह एक बार प्राणायाम हुआ। अथवा विपरीत क्रम (नासिका) से कर ले। इससे मन स्थिर होने में सहायता होगी। यदि इसके उपरान्त दो मिनट के लिए कानों में तर्जनी उंगली डालकर आँखें बंद कर ली जावें तो मन बहुत शीघ्र एकाग्र होता है। थोड़ी देर सीधे बैठने पर नासिका के दोनों स्वर चलने लगेंगे। समझ लें कि मंत्र जप का यही सर्वश्रेष्ठ समय है। अगर न चले हों तो उसी प्रकार बैठे रहकर नासिका का अग्रभाग १५-२० सैकिण्ड के लिए अंगूठे और तर्जनी से दाब लें।

ध्यान का अर्थ है किसी वस्तु विशेष पर चेतना या मन को केन्द्रित करना। पूज्य गुरुदेव कहा करते थे-''यत्र मनोलीयते तत्र प्राणों लीयते, यत्र प्राणो लीयते तत्र मनोलीयते'' अत: खुली

आँखों से एकटक आराध्य का चित्र देखें और मंत्र जाप भी करें। फिर थोड़ी देर को आँखें बंद करके उस चित्र की छवि या प्रतिमा (इमेज) देखने का प्रयास करें। ध्यान हटने पर पुनः आँखें खोलकर चित्र देखें। बहुत संभव है कि इस बीच तुम्हें अपनी अच्छी बुरी पूर्व की घटनायें याद आवें, तो दुखी या परेशान न हों। उन्हें झटके से भूलने या दबाने का प्रयास भी न करें। साक्षी भाव से मन से निकलने वाली भावनाओं को पुनः स्मरण होने के बाद निकल जाने दें। इसी प्रकार क्रमशः **मंत्र जाप और (अथवा) चित्र की ओर एकाग्रता का प्रयास ही ध्यान है।**

पहिले दिन ५ मिनट से शुरू करें और प्रति सप्ताह ५ मिनट बढ़ाते हुए कम से कम ३० मिनट तक प्रतिदिन ले जाय। घंटा दो घंटा करना हो तो बहुत सबेरे उठकर करें ताकि घर और नौकरी के दायित्व में बाधा न आवे और आपकी उपासना को लेकर घर में कलह न हो। विद्यार्थी अपने अध्ययन की कीमत पर ध्यान को अधिक समय न दें। इस प्रकार आप उपासना के सच्चे अर्थ को प्राप्त कर लेंगे। उप का अर्थ है-''समीप'' और आसन का अर्थ है-''बैठना''। अर्थात् परमपिता के समीप बैठना।

संक्षेप में ध्यान की प्रगति के लिए निम्नस्थ निर्देशों का भी पालन करें-

(१) नियमितता :- ध्यान में प्रतिदिन बैठें। न बैठने देने के लिए अनेक काम और बहाने याद आयेंगे। परन्तु सोच लें, जैसा कि सुधांशु जी महाराज कहते हैं, कि उस परमसत्ता को प्रति घंटा १ मिनट के हिसाब से प्रतिदिन २४ मिनट अवश्य दें।

(२) एक ही समय :- ध्यान में बैठने का एक ही समय हो । पाँच दस मिनट का हेरफेर भी न हो तो अच्छा है क्योंकि चिंतन द्वारा ही लहरें (वेव्स) २४ घंटे के अन्तराल से पुनः गुजरती हैं। अतः मन उस समय ध्यान की **अनुकूल स्थिति** में होता है। रात में ध्यान करने से अन्य पुरुषों की आपके प्रति स्नेह और (अथवा) द्वेषमय चिंतन धारायें मन में उचाट पैदा नहीं करतीं- ऐसा पूज्यपाद गुरुदेव योगिराज चन्द्रमोहन जी का विचार है।

(३) स्थान :- इस संदर्भ में दो बातें विचारणीय हैं-

प्रथम- स्थान एक हो। बार-बार जगह बदलने से एकाग्रता में कठिनाई होती है। दूसरी बात-स्थान ''एकान्ते नदी तीरे अथवा शून्य मंदिरे (स्थल)'' हो। ज्ञानार्णव के श्लोक -२२ में कहा गया है-

विकीर्यते मनः सद्यः स्थान दोषेन देहिनाम्

तदैव स्वस्थतां धत्ते स्थानमासाद्य बन्धुरम्।।

अर्थात् स्थान के दोष से प्राणियों का मन शीघ्र विकार को प्राप्त होता है तथा वही मन रमणीक स्थान पाकर स्वस्थता को धारण करता है।

(४) **एक आसन :-** एक आसन भी ध्यान में सहायक होता है। ज्ञानार्णव पर्व २६ पृ. ४४७ श्लोक १० में कहा गया है-

पर्यकंमर्धपर्यकं बज्रं वीरासनं तथा ।
सुखार विन्द पूर्वेच कार्योत्सर्गश्च सम्मतः।।

अर्थात् पर्यंक, अर्धपर्यंक, बज्रासन, वीरासन, सुखासन और पद्मासन ध्यान के लिए अभीष्ट माने गये हैं अतः कोई एक आसन चुन लें।

(५) **दिशा :-** साधक को ध्यान के समय पूर्व दिशा अथवा उत्तराभिमुख होकर बैठना चाहिए ऐसा ज्ञानार्णव में निर्देशित है।

(६) **ध्यान की आंतरिक दशायें :-** ज्ञानार्णव सर्ग २० श्लोक १० में कहा गया है कि उत्साह, निश्चय, धैर्य, संतोष और त्याग से योगसिद्धि होती है।

(७) **एक देव (इष्ट) :-** चेतना के केन्द्रीकरण (कन्सेन्ट्रेशन ऑफ कांशसनेस) को ध्यान कहते हैं बार-बार केन्द्र बदलने से चित्त की स्थिरता में बाधा आती है।

(८) **एक मंत्र :-** ध्यान कार्य शुरू करने से पूर्व गुरुदेव द्वारा निर्देशित अथवा जिस मंत्र में आपकी आस्था और विश्वास हो केवल उसी का जप करें। आस्था और विश्वास वस्तु में रुचि जाग्रत करते हैं।

(९) **व्यावसायिक मनोवृत्ति का अभाव :-** व्यावसायिक मनोवृत्ति का अर्थ है-शीघ्र लाभ पाने की इच्छा अथवा चिन्ता। हर वस्तु फलने में समय लगता है। आप दो चार दिन में ईश्वर दर्शन अथवा बुद्धत्त्व प्राप्त नहीं कर लेंगे। चिंता ध्यान में बाधा बनेगी। अतः दोनों समय भोजन की तरह दोनों समय ध्यान की आदत डालें। इसे दिनचर्या का भाग मान लें। दिन गुजरने के साथ-साथ साधना पक्षदृढ़ होता जावेगा।

सम्प्रति यही नौ सूत्र ध्यान के लिए पर्याप्त है। जिस तरह माता-पिता बच्चे का हाथ पकड़ कर चलना सिखा देते हैं, विश्वास रखें आगे का मार्ग दर्शन ध्यान में श्री गुरुदेव कर देंगे। बस शुरू तो कर दें।

***

जीवन मुक्त का चित्त अचल होता है। अचल चित्त ही शुद्ध मन है। ज्ञानी का मन शुद्ध मन कहा जाता है। ब्रह्म, ज्ञानी के मन के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इस प्रकार ब्रह्म शुद्ध मन ही हुआ। ब्रह्मलोक आत्म लोक ही है।

पूर्णयोग

डॉ. केशवाचार्य

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रैयात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदँ सर्वं विदितम्।

(बृहदारण्यक २/४/५)

हे मैत्रेयी ! आत्मा ही देखने, सुनने और मनन निदिध्यास करने योग्य है। जिसे देखने, सुनने समझने और अनुभव करने से सब कुछ जाना जाता है। श्रुति है- **'अयमात्मा ब्रह्म'**। यह आत्मा ब्रह्म है।

तैत्तिरीय उपनिषद् में ब्रह्म को 'तटस्थ लक्षण' से इस प्रकार बतलाते हैं-

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्विजिज्ञासस्व, तद्ब्रह्मेति।

अर्थात् सृष्टि स्थिति और लय तीनों का कारण ब्रह्म है। स्वरूप लक्षण से इस प्रकार बतलाते हैं। **सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म** 'ब्रह्म सत्य है, ज्ञान स्वरूप है और अनन्त है।

और-

सत्तामात्रैक प्रकाशकं प्रकाशम्,
हृत्पुण्डरीकम् - न तेजो न तमः।

एक मात्र सत्ता है, सबको प्रकाशित करने वाला प्रकाश है, हृत्पद्म है, न शुक्ल है, न कृष्ण है। फिर भी ब्रह्म को मन वाणी के परे ही कहा है-

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

जहाँ से मनसहित वाणियाँ खाली हाथ लौट आती हैं, वास्तविक ज्ञान अनुभव से ही प्राप्त होता है। उसी अनुभव के लिए श्रवण, मनन, निदिध्यासन करने को कहा है। अथवा-

'तपसा ब्रह्म विजिज्ञासत्व, तपो ब्रह्मेति'।

तप से उस ब्रह्म को अनुभव करो, तप ही ब्रह्म है।

'मनसश्चेन्द्रियाणां च ह्यैकाग्र्यं तपः'।

मन और इन्द्रियों की एकाग्रता तप है। यही अभिप्राय पतंजलि के **'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'** का है। तप है-

''बाह्यान्तःकरण समाधानम्''।

'इन्द्रियों और अन्तःकरण का समाधान'। यही बात इसमें भी है। **'तमक्रतुः पश्यति'** पूर्ण समाहित स्थिति में ब्रह्म को देखता है। दोनों बातें एक ही हैं। पर तप में एक बात और है- तप शोषण है, जो बात **''नेति-नेति''** में है। तप, योग और निदिध्यासन तीनों का इस प्रकार सामंजस्य

हुआ है, और तीनों एक हुए हैं। यदि यह सत्य है कि 'मैं ब्रह्म हूँ,' (अहं ब्रह्मास्मि) यदि यह जो कुछ है आत्मा है और आत्मा ही सत्य और वही आत्मा है और वही तुम हो **(एतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्वमसि)** यदि आत्मा नित्य, शुद्ध, बुद्ध और मुक्त है, 'नित्य सिद्ध' है और एक है तो यह क्या बात है कि हम दुःखी होते हैं। और परमानन्द और अमृतत्व आद्यकैवल्य से विमुक्त हो जाते हैं ? यह वियोग आखिर किससे किसका हुआ है ? यही अनुसन्धान का प्रस्थान बिन्दु है। साथ ही पूर्ण योग इसी का उत्तर देता है। आत्मा तो दो नहीं हो सकते आत्मा अकेला है और एक ही है-

यस्मिन्सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।।

(ईशोपनिषद् ७)

जिसमें सब भूत आत्मा ही हो जाते हैं, यहाँ उस एकत्व के देखने वाले उस ज्ञानी के लिए मोह और शोक क्या है ? आत्मा विभु होने से सर्वत्र व्याप्त है और सब कुछ वही है। अभी जो पृथग्विध नाना भाव दीख पड़ते हैं। यथार्थ ज्ञान होने से एक ही अव्यय भाव देख पड़ेगा।

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयम्भुः
स्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्ष:
दावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्।।

(कठोपनिषद् २.१.१.)

स्वयम्भू (परमात्मा) ने बहिर्मुख इन्द्रियों का निर्माण किया। इस अपने अन्तरात्मा को कोई नहीं देख पाता। पर कोई धीर पुरुष अमृतत्व का इच्छुक होकर अन्तर्दृष्टि साधकर प्रत्यगात्मा को देख लेता है। अर्थात् अन्तर्मुख होने से ही अन्तर्यामी का बोध होता है। निदिध्यासन का जो वास्तविक अभिप्राय और कार्य है, वह पूर्ण योग में उत्तम रीति से दर्शित हुआ है। पूर्णयोग का जो साध्य है वही उसका साधन है। साधक को केवल इतना ही करना पड़ता है कि वह अपने विचारों के प्रवाह को रोककर इस मूल विचार पर आ जाय कि ''मैं कौन हूँ'' (कोऽहम्) यह मूल विचार उसे हृत्क्र में ले जाकर छोड़ देगा फिर उसे वहीं आसन जमाकर बैठ जाना है। वहीं उसकी निजगृह स्थिति और सनातन आत्म सत्ता है। परन्तु यदि इस माया पटल को कुछ और ही समझा जाय और इसमें अनेक प्रकार और स्तर देखे जायें तो- निदिध्यासन भी तत्व प्रकार और स्तर के अनुसार हो जाएगा। पूर्ण योग का रास्ता तो सीधा और साफ है। पर अधिकार भेद के अनुसार जो अन्य साधनाऐं हैं वे कठिन और कष्ट साध्य हैं। निदिध्यासन के अनेक प्रकार प्रचलित हैं।

पूर्णयोग यों समझने में बड़ा सरल मालुम होता है, पर समझ में आकर भी यह जल्दी समझ में नहीं आता। और इसका आचरण करना तो कठिन ही है। हाँ, यदि साधक के पीछे भगवद्दया का बल हो तो कुछ भी कठिन नहीं है। ऐसे साधक को उत्तम गुरु मिल जाते है। और सब काम बन जाता है। जैसे- सन्त रविदास जैसे सद्गुरु मिल जाने पर मीरा का सब काम बन गया। जैसे- सन्त

रामानन्द जी जैसे सद्गुरु मिल जाने पर कबीर का सब काम बन गया। जैसे सन्त नारद जी जैसे सद्गुरु मिल जाने पर प्रह्लाद का सब काम बन गया। जैसे महाप्रभु जी रामलाल जी महाराज जैसे सद्गुरु मिल जाने पर सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का सब काम बन गया। जैसे महायोगिराज सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जैसे सद्गुरु मिल जाने पर हम सभी गुरु भाईयों का काम बन गया है। हम सब बड़भागी हैं जो श्री सद्गुरु देव योगिराज जी श्री महाराज सद्गुरु के रूप में हमें प्राप्त हुये।

परीक्ष्य लोकान्कर्म चितान्ब्राह्मणो,
निर्वेदमाया नास्त्य कृतः कृतेन्।
तद्विज्ञानार्थं स गुरु मेवाभिगच्छे-
त्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।।
तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्य-
क्प्रशान्त चिताय शमान्विताय।
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं
प्रोवाच तां तत्वतो ब्रह्मविधाम्।।

(मुण्डकोपनिषद् १.२.१२.१३)

कर्म से प्राप्त होने वाले लोकों को अच्छी तरह देखने पर ब्राह्मण को यह वैराग्य हो आया कि कर्म से अकृत रूप ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती। इसलिए उस ब्रह्म को जानने के लिए वह समित्पाणि होकर ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय गुरु के पास गया। उस विद्वान (गुरु) ने उस पास बैठे हुए सम्यक् प्रशान्तचित्त और समयुक्त (ब्राह्मण) से तत्वतः वह ब्रह्म विद्या कही जिससे सत्य अक्षर पुरुष जाना जाता है। इस रीति से प्राप्त ज्ञान अमोघ होता है। अन्य प्रकार से उतना नहीं।

न नरेणावरेण प्रोक्त एष,
सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः।
अनन्य प्रोक्ते गतिरत्त नास्ति,
अणीयान् ह्यतकर्यमणुप्रमाणात्।।

(कठोपनिषद् १.२.८)

कोई अनाधिकारी पुरुष इसको कहे तो उससे यह सुविज्ञेय (अच्छी तरह जानने योग्य) नहीं है कारण बहुत प्रकार से इसका चिन्तन होता है। बिना किसी दूसरे के कहे भी इसमें गति नहीं है क्यों कि यह अनुप्रमाण से भी सूक्ष्म और इसलिए अतकर्य है।

नैषा तर्केण मतिरापनेया।
प्रोक्तान्यनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ।। (१.२.९)

यह (आत्म) मति तर्क से नहीं मिलती। हे प्रेष्ठ ! दूसरे के द्वारा कही जाने पर ही यह अच्छी तरह जानी जाती है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेव। (१.२.२३)

यह आत्मा व्याख्यान से, मेधा से, या बहुश्रुत होने से ही नहीं मिलता है। भगवद्दया ही इसके मिलने में मुख्य कारण है। 'धातुः प्रसादात्' भगवान के प्रसाद से ही यह ज्ञान प्राप्त होता है–

यमेवैष वृणुते तेन लभ्य–
स्तस्यैष आत्मा विवृणुतेतनूँ स्वाम्।।

यह आत्मा ही जिसको वरण करता है, उसी को यह प्राप्त होता है। उसका यह आत्मा अपनी (आत्म) तनु उसके सामने प्रकट करता है। जैसी भगवद्दया साधु-सन्तों, ऋषि महर्षियों से ही प्राप्त होती है और तब यह ज्ञान साधक के अन्तःकरण में प्रविष्ठ होकर ठहरता है।

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्था: प्रकाशन्ते महात्मनः।

(श्वेताश्वतर)

भगवान में जिसकी पराभक्ति है, जैसी भगवान में वैसी ही गुरु में है उस महात्मा पर ये कथित अर्थ प्रकट होते हैं। सच्चे श्रद्धालु और जिज्ञासु को गुरु वाक्य द्वारा उपदेश करते हैं। और अपनी मौन और प्रसन्न मुद्रा से प्रसाद प्रदान करते हैं। मौन की वाणी इतनी सच्ची होती है, कि वह अनसुनी नहीं हो सकती है। और उससे बरसने वाली करुणा की शोभा तो अनिवर्चनीय ही है। इस सम्पूर्ण उपदेश का सार एक ही श्लोक में इस प्रकार है–

हृदय कुहरमध्ये केवलं ब्रह्म मात्रं
ह्यहमहमिति साक्षादात्मरूपेण भाति।
हृदि विश मनसा स्वं चिन्वता मज्जताचा
पवन चलनरोधा दात्मनिष्ठो भव त्वम्।।

(श्री रमण गीता)

हृदय की गुफा के भीतर मात्र ब्रह्म ही है जो 'अहम् अहम्' (मैं, मैं) इस साक्षात् आत्म रूप से प्रकाशित होता है। इस हृदय में मन से प्रवेश करो, अपने आप को ढूढ़ो या गहरे में गोता लगाओ या प्राण विरोध करके आत्मा में स्थित हो जाओ। उसी क्षण सद्गुरु देव की कृपा हो जाएगी और पूर्ण योग ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाएगा।

***

मन की विश्राम-स्थली हृदय है। हृदय आत्मा का केन्द्र है। हृदय मानसिक केन्द्र का प्रतीक है। शारीरिक केन्द्र का नहीं।

महाप्रभु श्री रामलाल जी के प्रिय बालक
-: महात्मा सूखा :-

राजेश कुमार श्रीवास्तव 'राजू'

महाप्रभु श्री रामलाल जी,
स्वयं सदाशिव योगेश्वर।
युग-युग योग सिखाने आते,
वे ही सबके परमेश्वर।

सोलह दिव्य शरीर बनाकर,
की पवित्र यह बसुन्धरा।
हुई विलुप्त योग विद्या का,
गौरव पुनः प्रदीप्त करा।

कलयुग के अवतार प्रभुजी,
रामलाल बनकर आये।
अमृतसर में जन्मे, पिता,
श्री गण्डाराम अति हर्षाये।

जिनका जनम-मरण नहीं होता,
कर्म विपाक से जो हैं परे।
जन-जन के कल्याण हेतु,
प्रभु जन्म लिये लीलाएँ करें।

शिक्षा पूर्ण हुई प्रभुजी की,
मन संसार से ऊब चला।
उठा तीव्र वैराग्य हृदय में,
पूर्ण गुरु कोई नहीं मिला।

मर्यादा रक्षार्थ प्रभुजी,
कैसे-कैसे खेल करें।
गुरुओं के गुरुदेव प्रभुजी,
पूर्ण गुरु की खोज करें।

त्यागे माता-पिता, घर-देहरी,
निकल पड़े झट घर से।
आये ग्राम 'सवांई'- प्रभुजी,
चलकर अमृतसर से।

भूखे-प्यासे भटके प्रभुजी,
करते पूर्ण गुरु की तलाश।
जीवन धन्य तभी हो अपना,
हृदय लगी एक ही आश।

ग्राम सवाँई के लोगों को,
प्रभु ने कण्ठ लगाया।
ध्यान- भजन समझाकर,
उनको योग का महत्व बताया।

सिद्धगुफा निर्माण कराकर,
विरल पे दया दिखाई।
सबके कष्ट मिटा कर सबको,
योग की राह दिखाई।

सभी घेर लेते प्रभु जी को,
बातें करते प्यारी।
घर से भोजन लाते प्रभु को,
सेवा करते भारी।

सिद्धगुफा में बैठ प्रभुजी,
करते घोर तपस्या।
भोले गाँव के लोगों की,
सब करते दूर समस्या।

बाबूसिंह निज सुता-विवाह की,
करता था तैयारी।
पैसा बिन कैसे क्या होगा,
लगी थी चिन्ता भारी।

जलते घर के लोग उन्हें,
बाबू की खुशी न भाती।
खबर उड़ाई झूठ आयेंगें,
बड़े घने बाराती।

बाबूसिंह तब रोता आया,
करे निवेदन भारी।
नाथ सहारा एक आपका,
राखो लाज हमारी।

निज खड़ाँऊ रखवाये 'पाश' में
करुणा दिखलाई प्रभु ने।
प्रभु-खड़ाँऊ-प्रताप से पाया,
मनवांछित भोजन सबने।

ठाकुर गुलाबसिंह जी के मन,
'गंगा दरश' के भाव भये।
सभी गाँव के लोग गये थे,
उन्हें अकेला छोड़ गये।

अति उदास भये गुलाबसिंह जी,
बढ़ आये प्रभुजी के पास।
प्रभु ने कूप में गंग दिखाकर,
हर ली उनके मन की त्रास।

कूप से ही वे राजघाट,
गंगा के तट पर जा पहुँचे।
दोनों कर स्नान, गुफा पर,
सबसे पहले आ पहुँचे।

किसी को तीन कदम में प्रभुने,
कोसों दूर चलाया था।
किसी के खेत को श्री प्रभुजी ने,
लौकी से भर डाला था।

लोग शाम को काम खतम कर,
निकट प्रभु के आते थे।
प्रभु उनको बड़े प्रेम से,
नित उपदेश सुनाते थे

हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख-इसाई,
'योग' के सब अधिकारी।
सच्चे पात्र वही जो सादा,
सरल और सदाचारी।

'सदाचार' ही प्रभु मिलन को,
करता पूरी इच्छा।
'सदाचार' ही करता जग में,
धर्म की सदा सुरक्षा।

पाया पकड़ अपने गुरु का,
कोई नहीं कुछ पाता।
दूर रहे यदि धर्म करे,
वह गुरु से सब ले जाता।

सदाचार से सत्य अहिंसा,
प्रेम स्वतः सधते हैं।
ऐसे साधक योग मार्ग पर,
शीघ्र सफल होते हैं।

एक दिवस की बात गाँव के,
लोगों ने जिद ठानी।
चमत्कार दिखलाओ प्रभुजी,
तुम तो जग के स्वामी।

बोले प्रभु पुरुषार्थ कर्म से,
शक्ति का सुख होता।
इसके दुरुपयोग से भाई !
पतन भयंकर होता।

सच्चे संत सिद्ध पुरुषों से,
कोई हठ मत किया करो।
जैसा बोलें एक बार में,
श्रद्धा से स्वीकार करो।

अपना शत्रु-मित्र न कोई,
यूँ तो जग अपना सारा।
किन्तु रहे जो मर्यादा में,
मुझको लगे वही प्यारा।

श्री प्रभुजी ने अति समझाये,
भोले लोग नहीं माने।
प्रभु आज्ञा तब पाय मूँदलीं,
आँखे मन-मन हर्षाने।

दीखें सर्प कूप में गहरे,
सबके सब गिरते जाते।
अन्धकार में कई युग बीते,
प्रभुजी-प्रभुजी चिल्लाते।

तभी प्रभु आज्ञा पा सबने,
आँखें खोलीं धीरे से।
हाँफ रहे थे बुरी तरह से,
तर हो गये पसीने से।

क्षमा याचना की तब सबने,
प्रभु चरणों से लिपट गये।
सदा आज्ञा मानी जब तक,
श्री प्रभुजी की शरण रहे।

श्रेष्ठ जाति नहीं पढ़ा लिखा नहीं,
सूखा बालक एक महान।
छोटेपन की ठेस न उर में,
तनिक नहीं राखे अभिमान।

दीन दुःखी यह बालक प्रभु में,
सच्ची प्रीति लगाता।
धीमर जाति के कारण प्रभुको,
दूर से शीश नवाता।

समझदार सूखा के गुणों पर,
प्रभु जी रीझ थे जाते।
उसके मर्यादा पालन से,
मन में अति हर्षाते।

दीनों के हितकारी प्रभुजी,
दीनानाथ कहाते।
तीन लोक सुख छोड़ जगत के,
दु:ख हरने को आते।

धीरे-धीरे श्री प्रभुजी का,
बीता अधिक समय था।
बाबूसिंह, गुलाब आदि का,
ध्यान प्रभु की तरफ था।

छोड़ चले न जायें प्रभुजी !
मन-मन अति भय मानें।
ताले में कर बन्द प्रभु को,
रात में पहरा तानें।

अणु रूप कर सिद्धगुफा से,
निकल पड़े थे प्रभुजी।
कौन रोकने वाला उनको,
जानें वे घट-घट की।

गुफाद्वार पर लटका ताला,
भक्त पड़े सब सोये।
जगने वाले की कुछ पाते,
सोने वाले रोये।

प्रभु चरणों का अन्तिम दर्शन,
कोई विरला ही पाये।
होता जीवन धन्य है, उसका,
नाम जगत में छाये।

उस दिन ब्रह्म मुहुर्त में सूखा,
जोत रहे नित खेत।
हाँकत बैल प्रभु-पद गावैं,
मेहनत का सुख लेत।

चलते समय संत सूखा पर,
प्रभु ने दया दिखाई।
दीखा दिव्य प्रकाश गगन में,
भोर होन जब आई।

धन्य वो सूखा जिसने प्रभु का,
अद्भुत तेज निहारा।
जाते धाम नेपाल को प्रभु ने,
गगन से उसे पुकारा।

छोड़ के बैल खेत से भागे,
सूखा डर कर भाई।
प्रेमभाव में भरकर प्रभु ने,
उसको टेर लगाई।

डरो न सूखा हम है बाबा,
सिद्धगुफा के वासी।
जाना बहुत जरूरी हमको,
दिव्य धाम अविनाशी।

कहना सबको बाबा बारह,
वर्ष बाद आयेंगे।
जो भी प्रेम से भजेंगे मुझको,
अपने उर पायेंगे।

दूर नहीं हूँ सदा साथ हूँ,
दु:खी न कोई होना।
जो शिक्षा दी हमने,
जग में बीज उसी के बोना।

सिद्धगुफा के दर्शन करके,
ध्यान में जो बैठेगा।
योगमार्ग का पथ पायेगा,
जीवन धन्य करेगा।

अश्रुप्रेम के उमड़ चले थे,
सूखा की आँखों से।
सुध-बुध अपनी खोये,
निकले बोल नहीं होठों से।

पोंछत हैं जलधार नेत्र की,
सूखा करे विचार।
ऐसा पुण्य क्या अपना,
प्रभु की करुणा हुई अपार।

जिनके तेज से चमक रहा है,
ये सारा संसार।
उस महातेज ने दर्शन देकर,
कर दिया बेड़ा पार।

हे देवों के देव कौन से,
पुण्य हमारे आये।
मुझ जैसे अधम ने प्रभु,
आपके निर्मल दर्शन पाये।

सिद्धगुफा तब सूखा भाई,
दौड़े- दौड़े आये।
जोर से दे आवाज,
प्रभु के प्यारे लोग जगाये।

रोते-रोते सूखा बोले,
हम सब भये अनाथ।
प्रभुजी तो नेपाल चले गये,
छोड़ हमारा साथ।

ताला खोल गुफा का,
सबने छाना कोना-कोना।
बिना प्रभु अब आवे सब को,
फूट-फूट कर रोना।

कहैं गुलाब हे सूखा !
प्रभु पर सच्चा प्रेम तुम्हारा।
धन्य भाग्य तुम्हारे,
प्रभु का निर्मल तेज निहारा।

सदा पास रहकर भी हमने,
प्रभु से यह न पाया।
दूर से ही जिस निधि को,
तुमने बिन माँगे ही पाया।

कभी-कभी होकर प्रसन्न,
श्री गुरुदेव बतलाते।
'महाप्रभु' की स्तुति करने,
सिद्ध सदा यहाँ आते।

आश्रम सेवा गुरू सेवा है,
वही समझ है पाया।
क्रोध-अहम को त्याग,
गुफा की सेवा में जो आया।

सद्गुरुदेह समझ कर,
जिसने आश्रम सेवा की है।
महाप्रभु श्री रामलाल की,
उसी ने भक्ति की है।

देखो ! सिद्धगुफा पर आकर,
लालच दृष्टि न रखना।
निष्काम भाव से प्रभु चरणों,
की निर्मल सेवा करना।

लालचवृत्तिवश जिसने भी,
गुफा पे आकर क्रोध किया।
सिद्धगुफा ने उसे उसी क्षण,
प्रभु चरणों से दूर किया।

मेरे बालक रघुनन्दन ने,
व्यर्थ ही क्रोध दिखाया।
सब कुछ पाया किन्तु न पायी,
सिद्ध गुफा की माया।

क्रोध और अभिमान कभी भी,
सिद्धों को नहीं भाते।
छोटे बनकर यहाँ जो रहते,
यहीं से सब कुछ पाते।

प्रभु-क्षमा, सद्गुरु दया,
के बाद बात बनती है।
कठिन पुरुषार्थ से सिद्धगुफा,
की गोद पुनः मिलती है।

सूखा के चरित्र से होता,
परिचय शुरू गुफा का।
श्रद्धा से जो पढ़े पाये फल,
'प्रभु' की दिव्य कृपा का।

***

ब्रह्मविष्णुमहेशादिदेवर्षि पितृ किन्नराः।
सिद्धचारणयक्षाश्च ह्यन्येऽपि मुनयोजनाः।।

अर्थात्:—ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि देवता, ऋषि, पितृ, किन्नर, सिद्ध, चारण, यक्ष और अन्य मुनि लोग भी गुरु की सेवा करते है।

अनादि महासिद्ध योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज

पूर्ण चन्द्र पन्त शास्त्री

(पूर्व प्रकाशित से आगे)

नरभक्षी अघोरी से अपने भक्त की रक्षा

अगले दिन श्री प्रभु जी ने अपने सत्संगियों के साथ नेपाल देश की ओर प्रस्थान किया। आप लोग प्रातः सूर्योदय होते ही अपने गन्तव्य की ओर चल पड़ते थे और १२-१३ मील की दूरी तय कर लेने के बाद जहाँ भी उन्हें विश्राम के लिये सुविधा जनक कोई स्थान दिखाई देता वहीं वे अपनी यात्रा को विराम दे देते। वे वहीं वनों से कन्दमूल एकत्रित करके भोजन तैयार करते थे। भोजनोपरान्त कुछ समय विश्राम करके सब लोग प्रभु जी के चारों ओर बैठकर उनसे योगचर्चा एवं योगियों के चरित्र सुना करते थे। प्रभु जी के सान्निध्य में बैठकर उनकी अमृतमयी वाणी को सुनते हुए कई बार उन्हें समय का ज्ञान तक नहीं होता था। तब प्रभु जी उन्हें सचेत करके स्वयं उठा देते थे। रात्रि को कुछ समय विश्राम करके प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में उठकर नित्यकर्म, स्नान सन्ध्या वन्दन ध्यानाभ्यास आदि से निवृत्त होकर प्रभु संकीर्तन करते हुए वे पुनः अपनी यात्रा पर चल पड़ते थे। उस साधु मंडली में कृष्णानन्द, मुखराम, हरीहरानन्द, दण्डी स्वामी एवं एक वृद्ध ब्राह्मण के अतिरिक्त कुछ अन्य लोग भी थे। वृद्ध ब्राह्मण प्रभु जी का परम भक्त था। वह हर समय प्रभु जी की सेवा में तत्पर रहता था, एक क्षण के लिये भी उनसे दूर नहीं होता था। कुछ लोग उससे चिढ़ते थे और आपस में कहते थे कि यह बूढ़ा हर बात में आगे रहता है, हमें कुछ भी सेवा नहीं करने देता। उन्होंने उसे प्रभुजी के चरणारविन्दों से दूर करने के कई प्रयास किये किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। अन्त में एक दिन उन्होंने यह योजना बनाई कि इस बूढ़े को कन्द मूल लाने के बहाने शीशागिरि पहाड़ी पर भेज दिया जाये। वहाँ एक अघोरी रहता है वह इसे खा जायेगा। और हमें फिर सेवा का खूब मौका मिलेगा। प्रभु जी की सर्वज्ञता एवं सर्वशक्तिमत्ता से अपरिचित वे लोग अज्ञानवश इस प्रकार का विचार कर ही रहे थे कि घट-घट वासी श्री प्रभु जी ने उसी समय दण्डी स्वामी को बुलाकर कहा-देखो, हमारी टोली में जितने लोग हैं उस हिसाब से कन्दमूल कुछ कम आ रहा है। तुम्हारे कई भाई भूखे रह जाते होंगे। इसलिये तुम लोग कन्दमूल अधिक लाया करो।

दण्डी स्वामी हाथ जोड़कर बोला-प्रभो ! कन्दमूल तो शीशागिरि पहाड़ी पर ही अधिक मात्रा में मिलते हैं, किन्तु वहाँ ज्ञानगिरि अघोरी रहता है और वह नरभक्षी है। अतः वहाँ जाने का हमें साहस नहीं होता। यह सुनकर वह बूढ़ा कहने लगा-प्रभु जी मैं जाऊँगा और वहीं से कन्दमूल खोदकर लाऊँगा। प्रभु जी बोले-नहीं बेटा ! उधर मत जा, कहीं और जगह से ले आ।

किन्तु वह बूढ़ा जिद्द करके वहीं चला गया। अघोरी ज्ञानगिरि ने उसे दूर से ही देख लिया और मन में प्रसन्न होकर सोचने लगा-पला-पलाया शिकार आ रहा है। इससे दो-तीन दिन का भोजन आराम से हो जायेगा। निकट पहुँचने पर ज्योंही उसने उसे पकड़ने की चेष्टा की तो उसे यह आकाशवाणी सुनाई दी-ज्ञानगिरि पला-पलाया शिकार तो मिल गया है पर इस पर हाथ डालने से पहले यह देख लेना कि यह किसका शिष्य है ? कहीं ऐसा न हो कि-तुझे खुद ही इसका शिकार बनना पड़े।

यह सुनकर अघोरी घबरा गया। उसने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा कि-प्रभुजी का अखण्ड तेज उस वृद्ध के चारों ओर फैल रहा है और उनका वरद हस्त उसके सिर के ऊपर है। तब उसकी उसे मारने की हिम्मत नहीं हुई।

वह उस वृद्ध से बोला-ब्राह्मण देवता। तुम्हारे कर्म बड़े ऊँचे हैं। तुम्हारे रक्षक तो स्वयं प्रभु हैं। अतः हम तुम्हें मार नहीं सकते। अब हम तुम्हें मारने के बदले कुछ देकर ही यहाँ से विदा करेंगे। क्योंकि नियम ही ऐसा है कि जो व्यक्ति हमारे हाथों मरने से बच जाता है उसे हम वरदान देकर लौटाते हैं। अब तू भी हमसे मन चाहा वर माँग ले।

बूढ़ा बोला तुझसे मैं क्या मागूँगा। तू तो स्वयं मंगता है। तुझे जो कुछ चाहिये तू ही मुझसे माँग ले। यह सुनकर अघोरी को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह उसके शरीर में सिद्धियों के स्थानों को देखने लगा कि क्या-क्या सिद्धियाँ इसके पास हैं ! तो वह क्या देखता है कि सिद्धि तो उसके पास कोई नहीं है किन्तु प्रभु जी का वरद हस्त उसके सिर के ऊपर है और वे कह रहे हैं- बेटा ! इसके लिये तू मुँह से जो भी कहेगा वैसा ही हो जायेगा। तू इसे दण्ड देना चाहेगा तो दण्ड मिल जायेगा, यदि योगी बनाना चाहेगा तो यह योगी बन जायेगा। तेरे मुँह से शब्द निकलते ही तत्काल वैसा ही हो जायेगा। यह देख अघोरी ज्ञानगिरि उस वृद्ध से बोला-ब्राह्मण देवता ! मैं जानता हूँ कि-तुम अपने मुँह से कुछ भी नहीं माँगोगे। अतः मैं बिना माँगे ही अपनी ओर से वाक्‌सिद्धि का वरदान देता हूँ। अब तुम जिसको जो कुछ कहोगे वही हो जायेगा।

बूढ़ा बोला-नहीं, मुझे तेरी सिद्धि नहीं चाहिये। अघोरी कहने लगा- अब तो मैं तुम्हें सिद्धि का वर दे चुका हूँ और अपने नियम के अनुसार ही तुझे यह सिद्धि दी है।

तब वह बूढ़ा वहाँ से लौट गया, वह कन्दमूल लेकर प्रभु जी के पास आ रहा था तो रास्ते में ही उसे वे लोग मिल गये जो उसे मरवाना चाह रहे थे।

बूढ़े से सारी घटना को सुनकर वे उसे भयभीत करते हुए बोले- सिद्धि का वरदान लेकर तू तो अपने लिये चौरासी लाख खरीद लाया है। अब तू किसी को वरदान देगा और किसी को शाप देगा। इससे अवश्य चौरासी लाख के चक्कर में पड़ जायेगा।

बूढ़ा सरल था। अत: वह उनकी बात पर विश्वास कर गया। उसने कन्द मूल का गट्ठर उन्हें देते हुए कहा-अब ये कन्दमूल आप लोग संभालो। प्रभु चरणों में मेरा अन्तिम प्रणाम कह देना वाक्सिद्धि का वरदान खोने के लिये मैं अब जाता हूँ। उसे खोकर दूसरा जनम लेकर फिर प्रभु जी के चरणों में पहुँच जाऊँगा। मेरी यह अन्तिम सेवा प्रभु चरणों में अर्पित कर देना।

वे लोग ऊपरी मन से कहने लगे। अरे भाई ! तू कहीं मत जा, यहीं रह किन्तु वह माना नहीं और चला गया। तब वे लोग प्रभु जी के पास पहुँचे और उन्हें सारी बात बता दी। प्रभु जी सोचने लगे-हमारा बच्चा इस तरह से मर गया तो अनर्थ हो जायेगा। उधर वह बूढ़ा वहाँ से जाने के बाद पहाड़ की चोटी से गिरकर अपना शरीर नष्ट कर देने का निश्चय कर चुका था। ज्योंही वह पहाड़ की चोटी पर चढ़कर वहाँ से नीचे गिरने को तैयार हुआ तभी श्री प्रभु जी वहाँ प्रकट हो गये और बोले- बेटा ! तू इस तरह से अपना शरीर क्यों नष्ट करना चाहता है ? वह बोला प्रभु जी वाक्सिद्धि व चौरासी लाख के चक्कर को नष्ट करने के लिये मैं ऐसा कर रहा हूँ। इससे मैं पाप-पुण्य के झमेले से बच जाऊँगा।

प्रभु जी गम्भीर होकर बोले- अरे ! इतनी सी बात पर तुमने इतना बड़ा निर्णय ले लिया। अघोरी ने तुम्हें जो सिद्धि दी वह हमने उसी समय तुमसे छीन ली थी। वह सिद्धि अब तेरे पास नहीं है। तेरे कहने से न किसी का भला होगा और न बुरा। जो हम चाहेंगे वह होगा, तेरे चाहने से कुछ नहीं होगा। उस वृद्ध की सरलता, सेवा एवं समर्पण भाव को देखकर प्रभु जी उस पर बड़े प्रसन्न हो गये और बोले- बेटा ! आज से तुम पूर्ण भूतजयी योगी बन गये हो। अब तुम सब प्रकार के द्वन्द्वों से मुक्त होकर समाधि का अखण्ड आनन्द प्राप्त करो। यह कहकर उन्होंने उसे शीशागिरि पहाड़ी पर समाधि में बैठा दिया।

काठमाण्डू में पदार्पण तथा नेपाल नरेश द्वारा प्रभु जी का भव्य स्वागत

अगले दिन प्रात: नित्यकर्म, स्नान सन्ध्या वन्दन आदि से निवृत्त होकर आप लोग आगे की यात्रा पर चल पड़े। घोर वनों को पार करते हुए तथा हिंसक जन्तुओं का सामना करते हुए आप लोग दो तीन दिन में नेपाल देश की राजधानी काठमाण्डू पहुँच गये, वहाँ आपने एक धर्मशाला में डेरा लगाया। उन दिनों वहाँ के राजा का भाई किसी असाध्य रोग से ग्रस्त था। उसके इलाज के लिये दूर-दूर से अच्छे-अच्छे डाक्टर, नामी वैद्य और हकीम बुलाये जा चुके थे। उनके द्वारा सब प्रकार का इलाज किये जाने पर भी उसकी हालत में किसी प्रकार का सुधार नहीं हुआ। प्रभु जी के काठमाण्डू पहुँचने के दो दिन बाद ही पूरे नगर में इस बात का प्रचार हो गया कि अमुक धर्मशाला में कोई सिद्ध महात्मा ठहरे हुए हैं। कर्ण परम्परा से यह बात राज महल तक भी पहुँच गयी। राजा ने

जब यह समाचार सुना तो उसने अपने एक मन्त्री को प्रभु जी के पास भेज दिया। मन्त्री ने वहाँ पहुँचकर प्रभुजी को प्रणाम किया और राजा के भाई की विषम रूग्णावस्था का समाचार बताकर आपसे राजमहल में पधारने का निवेदन किया। प्रभु जी ने दयार्द्र होकर उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और उसके साथ ही आप राजमहल में चले गये। राजा ने आपका बड़ा सम्मान किया और फिर आपको उस कमरे में ले जाया गया जहाँ रोगी विश्राम कर रहा था। प्रभु जी ने उन लोगों का मन रखने के लिये रोगी की कलाई पकड़कर उसकी नब्ज देखने का अभिनय किया और जेब से पुड़िया निकालकर उसके मुँह में उडेल दी। फिर उसके सिर पर हाथ रखकर अपने संकल्प से उसे उसी क्षण पूरी तरह से स्वस्थ कर दिया। यह चमत्कार देखकर सारा राजपरिवार बड़ा प्रभावित हुआ। राजा ने गद्‌गद् हृदय से आपका आभार व्यक्त किया। उसने सभी सत्संगियों के सहित अगले दिन पुनः राजप्रासाद में आमन्त्रित करके आपका भव्य स्वागत किया। आपके सम्मान में दरबार का आयोजन किया गया तथा नगर में शोभा यात्रा निकाली गई। इस प्रकार नेपाल नरेश ने बड़े सम्मान के साथ प्रभु जी को विदा किया।

नेपालवासी सद्‌गुरुदेव भगवान सदाशिव से मिलन

प्रभु जी ने काठमाण्डू में चार-पाँच दिन विश्राम किया। इस बीच आपने वहाँ के प्रसिद्ध धार्मिक स्थलों के दर्शन भी कर लिये। तदनन्तर आपने मुखराम कृष्णानन्द तथा अन्य सभी भक्तों को उनके घरों को लौटा दिया और आपके पास जितना धन बचा था वह भी उन लोगों को बांट दिया। अब आपके पास केवल हरी हरानन्द जी रह गये थे। बाद में उन्हें भी शीशागिरि पहाड़ी पर एक गुफा में ध्यान में बैठा दिया, जो अब भी उसी पहाड़ी पर समाधि में लीन रहा करते हैं। इस प्रकार अपने सभी सत्संगियों को विदा करके प्रभु जी एक ऊँचे पहाड़ पर चढ़ गये और वहाँ माता गुंजेश्वरी देवी के दर्शन करके उसी पहाड़ पर विचरण करते हुए कई मील आगे निकल गये। इतने में रात्रि हो गई तो आप हिंसक जन्तुओं से संकुल उस घोर वन में एक झाड़ी के नीचे सो गये। ठीक अर्धरात्रि को आपको गुरूदेव भगवान सदाशिव ने दर्शन दिये, आवाज देकर आपको जगाया और बोले-''अरे ब्राह्मण देवता तुम यहाँ छिपकर सोये हुए हो और हम तुम्हें लेने आये हैं। चलो हमारे साथ''। ऐसा कहकर वे प्रभु रामलाल जी को अपने साथ आकाश मार्ग से अपने लोक में ले गये। वहाँ पहुँचकर प्रभु जी को अपार आनन्द की अनुभूति हुई। वे बहुत देर तक अपने गुरुदेव के चरण कमलों से लिपटे रहे। फिर उठकर हजारों कामदेवों की शोभा को लजाने वाली उनकी मनोहारी छवि के बार बार दर्शन करते रहे।

उनका मुखमण्डल चन्द्रमा के समान मोहक और शान्त तथा सूर्य के समान परम तेजोमय था। गौरवर्ण का उनका सुन्दर शरीर घुटनों के नीचे तक पहुँची हुई जटायें तथा चेहरे पर घनी दाढ़ी और

होंठों के पास तक पहुँची हुई भौहों के कारण और अधिक शोभायमान हो रहा था, उनकी कमर में व्याघ्राम्बर लिपटा हुआ था, गले में सफेद जनेऊ शोभा दे रहा था तथा वे हाथों में लम्बा त्रिशूल धारण किये हुए थे।

उन्होंने बड़े प्यार से प्रभु रामलाल जी को अपने पास बैठाया। उन्हें सिद्धलोक की महिमा बताते हुए यह समझा दिया कि उन्हें किस प्रकार वहाँ रहना होगा और क्या-क्या सावधानियाँ बरतनी होंगी। उन्होंने एक नरभक्षी पौधा दिखाकर कहा-इस पौधे से सदा बचकर रहना। यदि कोई इसे छूता है तो यह अपने पत्तों से उसे पकड़कर पत्तों को सिकोड़ लेता है और उसका सारा खून पी जाता है। इस प्रकार उसे राख का ढेर बनाकर ही छोड़ता है।

सदाशिव स्वरूप अपने गुरुदेव को पाकर प्रभु रामलाल जी आनन्द विभोर हो रहे थे। उन्हें ऐसा लग रहा था मानो उन्हें त्रिलोकी का राज्य मिल गया हो। वे दिन भर उनकी सेवा में उपस्थित रहते थे और उनका संकेत पाकर तदनुसार आचरण किया करते थे। एक बार रात्रि को वहाँ उनकी गुफा के बाहर धूने के पास एक भंयकर शेर आ गया। महाप्रभु सदाशिव ने अपना चिमटा पकड़ाते हुए उन्हें कहा- जाओ, इससे प्रहारकर शेर को भगा दो। अपने गुरुदेव की आज्ञा को शिरोधार्य कर प्रभु रामलाल जी शेर की ओर बढ़े और उन्होंने शीघ्रता से उसकी पीठ पर चिमटे से प्रहार किया तो शेर कुत्ते की तरह चिल्लाता हुआ भाग गया, अगले रोज रात्रि को उसी समय एक भालू आ गया। उसे भी प्रभु जी ने अपने गुरुदेव का आदेश मिलते ही उन्हीं के चिमटे से भगा दिया। उससे अगले दिन भी रात्रि को पुनः एक शेर गुफा पर आ गया। अपने गुरुदेव का संकेत पाकर प्रभु रामलाल जी ने उसे भी भगा दिया। महाप्रभु सदाशिव जी अपने युवा शिष्य रामलाल जी को अपने पास बैठाकर उन्हें तीन दिन तक योगोपदेश करते रहे। इसके बाद वे छः महिने के लिये समाधि पर बैठ गये। समाधि में बैठने से पूर्व उन्होंने प्रभु रामलाल जी से कहा-अब हम कुछ महिने समाधिस्थ रहेंगे इस बीच तुम अपना ध्यानाभ्यास करते रहना। उन्होंने बताया कि- इस विस्तृत उपासना में चार-चार, छः-छः मील की दूरी पर सैंकड़ों वर्षों की आयु वाले तथा ऊँची-ऊँची स्थिति वाले अनेकों योगी अपनी-अपनी गुफाओं में बैठकर आत्म चिन्तन में लगे हुए हैं। यदि तुम्हारा मन न लगे तो कभी-कभी उन लोगों के पास जाकर सत्संग कर लिया करना। हिमालय का यह पवित्र क्षेत्र सिद्धों की तपोभूमि है, जो कि जनसाधारण के लिये अदृश्य है। सिद्धकृपा के बिना कोई भी सांसारिक व्यक्ति यहाँ प्रवेश नहीं कर सकता। इतना कहकर योगेश्वर सदाशिव अपनी गुफा में पद्मासन लगाकर बैठ गये और कुछ क्षणों में ही उनकी समाधि लग गई।

(क्रमशः)

जीवन तत्व साधन

(स्वास्थ्य-चर्चा)

(पिछले अंक से आगे)

प्राणायाम मे जब प्राणवायु अन्दर ली जाती है तब मस्तिष्क के अन्दर वायु केन्द्रो मे एक प्रकार की लहर पैदा होती है जिसको afferent impulse कहते है और जब अपान वायु द्वारा श्वास बाहर फेंक दी जाती है तब उस लहर को Efferent impulse कहते है। प्राण और अपान वायु जहाँ मिले है वहाँ एक तीसरी लहर पैदा होती है जिसको व्यान वायु अर्थात् Reflex impulse कहते है। यह लहर मस्तिष्क के अथवा मेरुदण्ड से अथवा Sympa-thetic nerve centre अर्थात् चक्रो मे उत्पन्न होती है। जब Reflex impulse मस्तिष्क मे पैदा होती है तो प्राण शक्ति अपान वायु द्वारा शरीर के Skeletal muscles को मिलती है और शरीर मे हरकत (Conscious sensation) सी होती है। किन्तु जब यह लहर मेरुदण्ड के किन्ही चक्रो से उत्पन्न होती है तब प्राण व अपान के accelerating effect को उन अंगों मे ठीक करती है जो उस चक्र से शासित होती है। परन्तु वह हरकत Conscious Sensation से नही होती है। किन्तु जब अचेतन कार्य चेतन होना चाहता है तब एक दूसरी लहर उस अंग से मेरुदण्ड द्वारा ब्रह्मरन्ध्र चक्र को जाती है और मस्तिष्क के cortex मे पहुँचती है। इस लहर को acceleratory impulse कहते है। यह लहर मस्तिष्क मे जाकर हलचल पैदा करती है। वहाँ से एक दूसरी लहर उत्तेजित इन्द्रिय को आती है। इसको Equipoising impulse कहते है। यह लहर Vagus तथा parasympathetic स्नायु तन्तुओं से गुजरती है और फिर उसी से शासित होती है। उदाहरणार्थ यदि सोते समय हमको किसी कीड़े ने काट लिया और दर्द अधिक न हुआ तो अचेतना मे ही चेतन हो जायेंगे। मेरुदण्ड से खबर मस्तिष्क को पहुँच जायेगी और वहाँ से आँखो को आज्ञा होगी कि देखकर काटे हुए स्थान को खुजलाये या दवा लगाये आदि। मस्तिष्क यह कार्य Vagus nerve को सौप देता है। और बाद को सारी क्रियायें Vagus nerve द्वारा ही होती है।

शरीर मे जो impulses हुआ करती है वह प्राण, अपान, उदान व्यान व समान प्राणो द्वारा हुआ करती है। इन पाँचों प्राणो का impulse हमारे अधीन नही है। अर्थात् हम इनकी लहरो को उत्पन्न होने से रोक नही सकते। यदि किसी अंगुली मे बिच्छू काट खाये और हम चाहे कि दर्द या कष्ट हमें न हो, तो यह हो ही नही सकता दर्द मस्तिष्क तक पहुँचकर हमको बेचैन कर देगा, किन्तु Vagus nerve अथवा कुण्डलिनी पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेने पर हममे यह शक्ति आ जाती है कि हम इन पाँच प्राणो की लहरों को उठने दें या न उठने दें। यहाँ तक कि हममे इतनी शक्ति आ जाती है कि तमाम स्नायु-तन्तुओं की लहरों को बन्द कर दें और इस तरह शरीर के Katabolic activity अर्थात् हृदय की धड़कन आदि क्रियाओं को भी रोक दें।

प्राणायाम मे जब कुम्भक किया जाता है तब श्वास द्वारा Oxygen शक्ति आनी बन्द हो जाती है और प्रश्वास द्वारा Carbonic acid gas निकलना बन्द हो जाती है। उस समय रक्त की

Viscosity बढ़ जाती है। इसकी वृद्धि से कुंडलिनी के मूल में भारी धक्का लगता है। नाभि चालन क्रिया में भी मूलाधार में इसी प्रकार बार-बार धक्का लगता है। उस समय कुंडलिनी में एक लहर पैदा होने लगती है। और वह लहर मूलाधार व स्वाधिष्ठान चक्रों में होकर मणिपूरक चक्र में पहुँच जाती है।

प्राणायाम के साथ बन्ध भी किया जाता है। यह बन्ध तीन प्रकार के हैं। १. मूलबन्ध २. उड्डियान बन्ध तथा ३. जालन्धर बन्ध। मूलबन्ध से जब गुदा संकुचित होती है और उस पर धक्का लगा करता है तो अपान वायु का निकलना बन्द हो जाता है और स्वाधिष्ठान चक्र से होती हुई मणिपूरक चक्र में पहुँचती है। जब चक्रों में लहर दौड़ती है तब समस्त Sympathetic fibres में लहर पैदा हो जाती है, और उदर तथा आँतों में गैस एकत्र हो जाती है और उसको चक्कर से फुला देती है। Splanchnic area की रक्तनालियों के संकोचन से abdominal viscera को रक्त मिलना कम हो जाता है और उदर व आँतों के स्राव का निकलना बन्द हो जाता है। शरीर में इस प्रकार की गड़बड़ी होने पर रक्त प्रवाह, श्वसन क्रिया व पाचन क्रिया में गड़बड़ी हो जाती है। हृदय तेजी से चलने लगता है। साधक दुर्बल होने लगता है और कुछ ज्वर मालूम होने लगता है। इस समय वह सशंकित हो जाता है। और समझता है कि वह बीमार हो गया है और भय के कारण प्राणायाम छोड़ देता है। परन्तु यह भय निर्मूल है, उसको अपने गुरु की देख-रेख में बन्धों सहित प्राणायाम करते रहना चाहिए। यह समय कुण्डलिनी के जाग्रत होने का होता है, कुंडलिनी इसको resist करती है। किन्तु प्राणायाम करते रहने से वह medulla में अपने स्थान पर इधर-उधर हिलने लगती है। और efferent और afferent impulse भेजने लगती है। इसी को vagus escape कहते हैं। साधन के आगे बढ़ने पर वह ऊपर चढ़ने लगती है। जैसे-जैसे प्राणायाम के साथ बन्धों को किया जाता है वैसे-वैसे कुंडलिनी ऊपर चढ़ती जाती है और मस्तिष्क में Cortex में पहुँच कर ब्रह्मरन्ध्र चक्र में पहुँच जाती है।

इस vaguse escape के होने पर जो शरीर में गड़बड़ी हो जाती है उसके सम्बन्ध में हमारे यहाँ के योगी कहा करते हैं कि जब कुंडलिनी जाग्रत होती है तब बड़े वेग के साथ झटका देकर ऊपर की ओर अपना मुँह फैलाती है। ऐसा मालूम होता है कि जैसे बहुत दिनों की भूखी हो और अब जागने के साथ ही खाने को अधीर हो उठी हो। अपनी जगह से नहीं हटती पर शरीर में पृथ्वी व जल के जो भाग हैं उन सब को चट कर जाती है। उदाहरणार्थ हथेलियों और पाँव के तलों को शोध कर उनका रक्त मांसादि खाकर ऊपर के भागों को भेजती है और अंग प्रत्यंग की सन्धियों को छान डालती है। नखों का सत भी निकाल लेती है। त्वचा को धोकर पोंछ-पोंछ कर स्वच्छ करती है। और उसे अस्थि पंजर से सटाये रखती है। पृथ्वी व जल इन दो भूतों के खाने के बाद सुषुम्ना में प्रवेश करके ऊपर पहुँच जाती है। उस समय जो चन्द्रामृत का सरोवर है वह उलट जाता है। और वह चन्द्रामृत कुण्डलिनी के मुख में गिरता है। इस अमृत को पान करके कुण्डलिनी सन्तुष्ट हो जाती

है। शरीर की जो सूखी पपड़ी रहती है वह भूसी की तरह निकल जाती है। उस समय योगी का शरीर हृष्ट-पुष्ट हो जाता है। उसकी कान्ति केसर के रंग-सी हो जाती है। उस योगी के देह का प्रत्येक अंग नया और कान्तिमय बन जाता है।

हृष्ट पुष्ट तन भये **सुहाये, मानहुँ अबहिं** भवन ते आये।।

नाभि चालन क्रिया की यह विशेषता है कि कुण्डलिनी जाग्रत होकरefferent और afferent impulse भेजने लगती है। किन्तु vagus escape नही होता और न पाचन क्रिया मे गड़बड़ी होती है क्योंकि इस क्रिया में कुण्डलिनी मे जगाने के साथ वैश्वानर अग्नि भी प्रदीप्त हो जाती है। बार-बार पल्टा खाते रहने से तथा मूलाधार पर धक्का लगने से प्राणवायु ईडा व पिंगला नाड़ियों में प्रवाहित न होकर सुषुम्ना मे प्रवेश कर जाती है और अभ्यास को बढ़ाने पर ऊपर चढ़ने लगती है। नाभि-चालन एक अद्भुत क्रिया है जिससे पाचन प्रणाली भी ठीक रहती है। शरीर में कोई रोग भी नही होता तथा प्राणायाम बन्ध मुद्रायें आदि करके जो कुण्डलिनी जाग्रत करने का कष्टमय साधन है वह सब इस क्रिया से सहज रूप में प्राप्त हो जाता है।

जानु प्रसार

जीवन तत्व साधन की पाँचवीं क्रिया का नाम जानु प्रसार है। इस क्रिया को नाभि-चालन करने के बाद अवश्य करना चाहिए। इस क्रिया को करने के लिए पूर्ववत् चित्त लेटा रहे। बाये पैर को तनाव दिए रहे और दायें पैर को मोड़ कर बायें जानु पर रखे। पैर को इस तरह रखना चाहिए कि दायें पैर के तलवे बायी जानु पर सट जायें और मुड़ा हुआ घुटना ऊपर की ओर रहे। अब धीरे-धीरे दाहिने पैर को अपनी दायी तरफ जमीन पर लाना चाहिए ताकि दाहिने पैर के घुटने व जानु जमीन से लग जावे। कुछ देर रुक कर दायें पैर को धीरे-धीरे उठाना चाहिए, ताकि घुटने ऊपर उठ जावे, और तलवे जानु पर सटे रहें। इस क्रिया को तीन बार करना चाहिए। इसके बाद दाहिने पैर को सीधा तान देना चाहिए और बाये पैर को मोड़कर उसके तलवे को दायें जानु पर सटाना चाहिए और पूर्ववत् धीरे-धीरे अपने दाये घुटने को बायी तरफ जमीन पर लाना चाहिए और घुटने व जानु को जमीन पर लगाना चाहिए। कुछ देर रुक कर बाये पैर को ऊपर उठा लेना चाहिए। इस क्रिया को भी तीन बार करना चाहिए। इस क्रिया मे दाहिने पैर को मोड़कर तीन बार जमीन पर लगाया जाता है और बायें पैर को मोड़कर तीन बार जमीन पर लगाया जाता है। जमीन पर लगाने व उठाने का काम धीरे-धीरे करना चाहिए। कुल क्रिया ४ मिनट में ही हो जाती है। समय का विभाजन इस तरह कर लेना चाहिए कि एक पैर को जमीन मे लगाने में पन्द्रह सेकेण्ड लगें, फिर दस सेकेण्ड वहाँ रुका रहे और फिर पाँव को उठाने मे पन्द्रह सेकेण्ड लगे। इस प्रकार एक बार करने में चालीस सेकेण्ड लगेंगे और एक पाँव से तीन बार करने में दो मिनट लगेंगे। इसी तरह दूसरे पाँव से तीन बार करने में तीन मिनट लगेंगे।

इस क्रिया को करने में जंघाओं व पेट के पूरे स्नायु-मण्डल यथार्थ स्थिति में आ जाते है और स्नानुओं में कोई विकृति नही रह जाती। नाभि चालन क्रिया करने मे जो तनाव व श्रम हो जाता है वह जानु प्रसार करने से ठीक हो जाता है और सभी स्नायुओं को विश्रान्ति मिल जाती है। यह पहले बताया जा चुका है कि शरीर के नस व नाड़ियों के अन्दर से मल को निकालने के लिए उन्हें तनाव व ढीलापन देना चाहिए। इस क्रिया से उस उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है और शरीर को बड़ा सुख एवं आनन्द मिलता है। इस क्रिया को जल्दी-जल्दी नही करना चाहिये। इसको धीरे-धीरे ही करने से लाभ होता है। जानु-प्रसार की क्रिया करने में अन्त्रपुट पर विशेष दबाव पड़ता है और उस थैली में पड़े हुये अन्न व गन्दे पदार्थ निकल कर बड़ी आँतो के रास्ते बाहर निकल जाते हैं। इस तरह ये क्रिया अन्त्रपुट कोष्ठबद्धता को दूर करने में बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है।

स्वाभाविक नियम यह है कि जो कुछ खाया जावे वह पच कर रक्त आदि बन जावे, और निस्सार पदार्थ आंतों से होता हुआ मल द्वार से बाहर निकल जावे। अनेक कारणों से आंते अपना काम ठीक प्रकार से नहीं करती है और अनपचा पदार्थ नालियों में अनेक स्थानों पर चिपक जाता है। इसी को कब्ज कहते हैं। कब्ज और अपच में भेद है। अपच तब होता जब छोटी आंतों में पाचन रस ठीक तरह से नही बनता और भोजन सार तत्व शरीर को नही प्राप्त होता और इस तरह अनपचा भोजन बाहर निकलने को मजबूर हो जाता है। इस स्थिति को अपच या बदहजमी कहते है। कब्ज बड़ी आंतो की गड़बड़ी से होता है। कभी-कभी छोटी बड़ी दोनों आंते अपना काम ठीक प्रकार नही करती तब कब्ज व अपच साथ-साथ रहता है। बड़ी आंतो की दीवारों में यत्रतत्र मल के चिपक जाने से कोष्ठबद्धता हो जाती है किन्तु भयानक प्रकार की कोष्ठबद्धता या कब्ज तब होती है तब अंत्रपुट सीकम की थैली में सड़े-गले पदार्थ जमा हो जाते हैं और निकल नहीं पाते। वे वहीं सड़ने लगते है और अनेक रोगों को उत्पन्न करते है।

पाचन प्रणाली-पोषण संस्थान

हमने अपने पिछले लेखों में पाचन प्रणाली के सम्बन्ध में बहुत कुछ बताया है किन्तु आंतों में होने वाले कब्ज को समझने के लिए पोषण संस्थान के कार्य को विस्तार से जानना आवश्यक है।

भोजन के ठीक तरह परिपाक होकर नियमित रूप से रस तथा मल बनने का कार्य आमाशय या पाकस्थली से आरम्भ होता है। हम जो कुछ भोजन ग्रहण करते है वह अन्न नली द्वारा इस नली में पहुँचता है। अन्न नली के भीतरी भाग में भी बहुत सी छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ है। अन्न नली के भीतरी भाग में भी बहुत सी छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ होती है जो भोजन करते समय एक लसदार पदार्थ निकालने लगती है। यदि भोजन कुछ कम चबाया भी होता है तो वह इस लसदार पदार्थ के सहारे आसानी से आमाशय में उतर जाता है।

आमाशय में कई पर्त होते हैं। ऊपर रस का हिस्सा रहता है, नीचे श्लेष्मा वाला पर्त है और बीच में स्नायु पर्त होता है। इसी ऊपर के पर्त की असंख्यों ग्रन्थियों से पाचक रस निकलता है जिससे

भोजन पचकर रस के रूप में परिवर्तित हो जाता है। यह पाचक रस अथवा पित्त कुछ खारा और खट्टे स्वाद का होता है तथा सामान्य स्वास्थ्य वाले मनुष्य के शरीर में प्रतिदिन चार पौंड से आठ पौंड तक की मात्रा में उत्पन्न हुआ करता है। यह पाचक रस भोजन में मिलकर उसमें रासायनिक परिवर्तन कर देता है, जिससे उसका सारा भाग शरीर में सम्मिलित हो सकने योग्य बन जाता है। आमाशय से आगे चलकर भोजन छोटी आंतों में प्रविष्ट होता है। जहाँ यह आंत आमाशय से मिली है वहाँ एक पर्दा (valve) लगा हुआ है जो भोजन को आंत में जाने तो देता है पर उसमें से किसी पदार्थ को वापस लौटने नहीं देता। आंतों के प्रथम भाग को डियोडियम कहते हैं, दूसरे भाग को जेज्युनम और तीसरे भाग को इल्यम कहते हैं। इस इल्यम के अन्त में श्लेष्मा के पर्दे होते हैं। जिनमें छोटी आंत द्वारा रस चूस लिए जाने के बाद बचा हुआ निस्सार अंश बड़ी आंत में ढकेल दिया जाता है। इस बड़ी आंत के भी तीन भाग होते हैं–सीकम, कोलन व रेक्टम। इसी को मलाशय के नाम से पुकारा जाता है।

जहाँ छोटी आँत बड़ी आँत से मिलती है वहीं एक थैली है जिसे **अन्नपुंट या सीकम** कहते हैं। सीकम से निकली एक पूंछ होती है जिसे **अपेन्डिक्स** कहते हैं। कभी-कभी पित्त का कुछ अंश तथा अनपचे अन्न का भाग तथा अन्य विषैले पदार्थ सीकम में जमा हो जाते हैं और आंतों की कमजोरी के कारण वहाँ से बाहर निकल नहीं पाते और वहीं सड़ने लगते हैं। वे अनेक प्रकार के विषैले कीटाणुओं को उत्पन्न करते हैं और शरीर के अन्य भागों को भेजकर उन्हें रोगी बनाते हैं। कभी-कभी सीकम से कुछ पदार्थ अपेन्डिक्स में पहुँच जाते हैं और भयानक दर्द पैदा कर देते हैं। क्योंकि साधारणत: पाचन प्रक्रिया में इसका कोई योगदान नहीं होता इसलिए उस अवस्था में डाक्टर लोग अपेन्डिक्स को काटकर निकाल देते हैं और रोगी के प्राण बचाते हैं।

उपर्युक्त विवरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यदि भोजन को बिना ठीक प्रकार से चबाए हुए आमाशय में पहुँच दिया जावेगा, अथवा स्वाद के कारण भूख की अपेक्षा अधिक भोजन करके अमाशय के कार्य को बढ़ा दिया जायेगा अथवा जब तक आमाशय में पहले भोजन की पाचन क्रिया चल रही हो तब तक और कोई भोजन चाट या मिठाई आदि खाकर कच्चे रस में सड़ांद उत्पन्न करने का कारण उपस्थित कर दिया जावेगा तो उसके परिणाम शरीर के लिए हानिकारक ही सिद्ध होंगे। ऐसा कच्चा रसयुक्त पदार्थ जब छोटी आंत से गुजरेगा तो उसमें से वे जो रस चूसेंगी वह दूषित हो जायेगा और उससे बने हुए रक्त में भी उस सड़ांध का विष मौजूद रहेगा जो हमारे दिल, फेफड़े, गुर्दे तथा त्वचा आदि के लिए एक भार रूप होगा और सबमें कुछ न कुछ खराबी उत्पन्न करके सिर दर्द, चक्कर आना, चेहरे पर उदासी, दिल का धड़कना, खाँसी, जुकाम आदि रोग पैदा करेगा। रक्त के दूषित होने से बड़ी आँत की शक्ति भी क्षीण हो जाती है और उसके अन्दर पहुँचे हुए भोजन के शेष पदार्थ को मल में परिवर्तित नहीं कर पाती और धीरे-धीरे मलाशय की दीवारों से मल चिपक जाता है और यहीं से कब्ज शुरू हो जाता है।

※※※

कविता

वेद प्रकाश शर्मा –देहरादून

लिखने वाले प्रभु तू होके दयाल लिख दे।
मेरे ह्रदय अन्दर सद्‌गुरु का प्यार लिख दे।

माथे पर लिख दे ज्योति गुरु की।
नयनों में उनका दीदार लिख दे।

जिह्वा पर लिख दे नाम गुरु का
कानों में शब्द झंकार लिख दे।

हाथों पर लिख दे सेवा गुरु की।
तन मन धन उन पे वार लिख दे।

पैरों पर लिख दे जाना गुरु के द्वार।
सारा जीवन उनके साथ लिख दे।

इक मत लिखना गुरु का बिछुड़ना
चाहे तू सारा संसार लिख दे

लिखने वाले प्रभु होके दयाल लिख दे
मेरे ह्रदय अन्दर सद्‌गुरु का प्यार लिख दे।

गुरु-तत्व

पं० केशवदेवजी शर्मा

इस परिवर्तनशील जगत् में यह मनुजदेह परमात्मा का बनाया हुआ एक नूतन गृह है। घर में जैसे बहुत से द्वार होते हैं तैसे ही इस देह गेह में नव द्वार हैं– दो नेत्र, दो नासिका के छिद्र, दो कान, मुख, गुदा और मूत्रेन्द्रिय। श्रुति भी इस प्रकार ही कह रही है। यथा–

नवद्वारे पुरे देही हंसो लेलायते बहिः।

जैसे घर में खंभे होते हैं वैसे ही शरीर में नलियाँ रूपी स्तम्भ हैं। घर को बनाने में जैसे ईंट, चूना और पत्थरों से काम लिया जाता है वैसे ही देहरूपी घर में रुधिर, माँस हड्डी, मज्जारूपी जल, चूना और ईंटों से काम लिया गया है। घर को सुन्दर बनाने के लिये जैसे अस्तरकारी की जाती है, वैसे ही देहगेह के ऊपर चर्मरूप अस्तरकारी की गयी है और भवन बनकर तैयार हो गया है। 'अधुना' नयन-पथ के समक्ष ऐसी बिजली-सी चमकी कि इस सदन के बनाने वाले ने इस ढंग का नमूना किस प्रकार से बनाया ?

यह साफ-साफ दृष्टिगोचर हो रहा है कि छोटे-से-छोटे शिल्पकार से लेकर बड़े-से-बड़े इंजीनियर तक का कोई न कोई उपदेष्टा, गुरु, उस्ताद, टीचर, उपाध्याय वा आचार्य-अवश्य है, जिसकी अनुमति से यह शरीर भवन बना है।

अहो !!! जिसका पवित्र नाम लेने से अन्तःकरण में एक अद्भुत प्रकार का उल्लास होता है, जिसकी वेद, पुराण, इतिहास भी अत्यन्त प्रशंसा करते हैं यह क्या है ? वही तो 'गुरु-तत्व' है।

प्रिय पाठक महाशय ! गुरु-तत्व इतना गहन विषय है कि इसकी मीमांसा में बड़े-बड़े ऋषि-महर्षियों की प्रतिभा भी कुण्ठित हो जाती है। इस कलिकाल के भँवर में भ्रमित हुए इस क्षुद्र जन्तु की तो **'उद्बाहुरिव वामनः'** की-सी गति हो रही है। तथापि उदधि में नौकारूढ़ जन भी इतस्ततः भ्रमण करने की चेष्टा करता ही है।

प्रश्न–'गुरु' शब्द किस प्रकृति -प्रत्यय से निष्पन्न होता है, और उसका लक्षण क्या है ?

उत्तर– 'गृ शब्दे' क्र्यादि, और 'गृ निगरणे' तुदादिगण की धातु को 'कृग्रोरुच्च' (१/२५) इस उणादि-सूत्र से 'कु' प्रत्यय और उकारान्तादेश होने पर 'उरण्रपरः' (१/१/५१) इससे उरादेशान्तर 'कृत्तद्धितसमासाश्च' (१/२/४६) इससे प्रातिपदिक संज्ञा के पश्चात् 'सु' विभक्ति आने पर 'गुरु' शब्द सिद्ध होता है।

गृणाति, उपदिशति धर्ममिति गुः।

गिरत्यज्ञानमिति गुरुः।

यद्वा गीर्यते स्तूयते देवगन्धर्वादिभिरिति गुरुः।

धर्म का जो उपदेश दें, अज्ञानरूपी तमका विनाश कर ज्ञानरूपी ज्योति से जो प्रकाश करें, देव, गन्धर्वादि से जो स्तुत हों, उन्हीं साक्षात् देव की संज्ञा गुरु है। यह भावार्थ है।

सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसंग्रह में भगवान् शंकराचार्य भी स्वकीय स्वर्णाक्षरों द्वारा 'गुरु' शब्द का लक्षण अंकित करते हैं–

अविद्याहृदयग्रन्थिबन्धमोक्षो यतो भवेत्।
तमेव गुरुरित्याहुर्गुरुशब्देन योगिनः
।।२५७।।

मनु महाराज कहते हैं–

निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि।
सम्भावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते।।
(२/१४२)

परन्तु तान्त्रिक महाशय 'गुरु' शब्द के प्रत्येक वर्ण का इस रीति से अर्थ करते हैं– उनके मत से गकार का अर्थ सिद्धिदाता, रेफका अर्थ पापनाशक और उकार का अर्थ शम्भु है। अर्थात् जो सिद्धि दे सकते हैं, पापों के विनाश करने की जिनमें क्षमता है और जो मंगलकर्ता हैं, उन्हीं को गुरु कहते हैं।

अथवा गकार का अर्थ ज्ञान, रेफका अर्थ तत्व प्रकाशक और उकार का अर्थ शिवतादात्म्यप्रद है। अर्थात् जो तत्वज्ञान को प्रकट कर शिव के साथ अभिन्न करा देते हैं उन्हें ही गुरु शब्द से गुम्फित किया गया है।

हमारे शास्त्रमहोदधि भगवान् वेदव्यासजी ने कूर्मपुराण में दस प्रकार के गुरुओं का उल्लेख किया है–

उपाध्यायः पिता माता ज्येष्ठो भ्राता महीपतिः।
मातुलः श्वशुरश्चैव मातामहपितामहौ।
वर्णज्येष्ठः पितृव्यश्च सर्वे ते गुरवः स्मृताः।।
(कौर्म० उत्तरा.० १२/२६)

उपाध्याय, पिता, माता, बड़ा भाई, राजा, मामा, श्वशुर, नाना, बाबा, वर्णज्येष्ठ (ब्राह्मण)– 'वर्णानां ब्राह्मणो गुरु' रिति वचनात्–चाचा व ताऊ ये दस गुरु कहे गये हैं।

उपेत्य अधीयतेऽस्मादित्युपाध्यायः।

जो आचारांग, सूत्र, कृतादि एकादश और उत्पाद, अग्रायणी आदि चतुर्दशपूर्वक पाठी हों, जो स्वयं पढ़ते हैं और अन्य मुनियों को पढ़ाते हैं उन्हें उपाध्याय कहते हैं।

उपाध्याय और आचार्य में इतना अन्तर है–

एकदेशं तु वेदस्य वेदांगान्यपि वा पुनः।
योऽध्यापयति वृत्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते।।
(मनु० २/१४१)

'जो व्यक्ति अपनी जीविका के निर्वाह के लिये वेद का कोई अंश या वेदांग पढ़ाता है वह उपाध्याय कहलाता है'। परन्तु उपाध्याय आचार्य से छोटा होता है, क्योंकि कल्प एवं उपनिषद् के साथ सम्पूर्ण वेद पढ़ाना आचार्य का काम है। इदानीं थोड़े शब्दों में 'आचार्य' शब्द की विवेचना करते हैं। लिंग पुराण और ब्रह्माण्ड पुराण में ऐसा दिग्दर्शन कराया है–

यस्मात् पुरुषादयं माणवो धर्मानाचिनोति शिक्षते स आचार्यः।

स्वयमाचरते यस्मादाचारं स्थापयत्यपि।
आचिनोति च शास्त्राणि आचार्यस्तेन चोच्यते।।
(ब्रह्माण्ड० पूर्व० ३२/३२)

जो मुनियों के संघ के अधिपति हों और संघ के मुनियों को दीक्षा (शिक्षा), प्रायश्चित (दण्डादि) देते हों, उन तपधर्मकर्माचारादि गुणों के धारण करने वाले को आचार्य शब्द से व्यवहृत करते हैं।

अनेक गुरुओं के वर्ग में महर्षि वशिष्ठजी ने माता-पिता को ही फर्स्ट क्लास टिकट देकर आरामकुर्सी देने की कृपा की। यथा–

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
पितुर्दशगुणं माता गौरवेणातिरिच्यते।।
(अ० ३)

पाठकों ! इस सृष्टि में माता से अधिक कष्ट सहने वाला कोई दृष्टिगोचर नहीं होता जिसने हमें नव मास गर्भ में धारण किया, जब पैदा हुए तब किस लाड़-प्यार से हमारी सेवा की, हमारे तनिक-से रोगी होने पर सारी रात्रि जागते-जागते बितायी। स्वयं कष्ट सहे, पर हमें कष्ट न होने दिया। उसके इस कृत्य से हम जन्म-जन्मान्तर उऋण नहीं हो सकते। उसकी सेवा यथाशक्ति तन-मन-धन से कीजिये। देखिये, आप स्तम्ब धर्म सूत्र क्या आज्ञा दे रहा है-

माता पुत्रस्य भूयांसि कर्माण्यारमते तस्यां शुश्रूषा नित्या पतितायामपि। (१/१०/२८/९)

नास्ति मातृसमो देवः।

माता पुत्र के लिये बहुत कष्ट उठाती है, अतः माता पतित भी हो जाय तो भी उसकी सेवा करना हमारा धर्म है। पिता को देखिये, उन्होंने किस तरह परिश्रम करके हमारा पालन-पोषण किया, हमें पढ़ाया-लिखाया। जब किसी योग्य हुए तो उनके उपकार को ठुकराकर हमने बोलना तक छोड़ दिया। पाठको ! यदि आप निज जननी-जनक की सेवा करेंगे तो आपको निरन्तर सुखका अनुभव होगा। माता-पिता के प्रसन्न रहने से सब देवता प्रफुल्लित रहते हैं, इसे धर्मशास्त्र कितने उच्च स्वर से प्रतिबोधित कर रहा है-

पिता धर्मः पिता स्वर्गः पिता हि परमं तपः।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः।।
पितर्याचार्यवच्छुश्रूषा।
नास्ति तातसमो गुरुः।
नास्ति मातुः परो गुरुः।
माता पृथिव्या मूर्तिस्तु।
मातृदेवो भव। पितृदेवो भव।।

यद्यपि इन प्रमाणों से माता-पिता को उच्च माना है, तथापि-

शरीरमेव मातापितरौ जनयतः।

(आपस्तम्बधर्मसूत्र १/१/१/१५)

मातापितरौ शरीरमेव काष्ठकुंजादिसमं जनयतः।
आचार्यस्तु सर्वपुरुषार्थक्षमं रूपं जनयति।

अतः महर्षि गौतमने उपदेश किया है-

आचार्यः श्रेष्ठो गुरूणाम्

(गौ० ध० सू० १/३/५६)

अतः आचार्य ही श्रेष्ठ हैं, ऐसा निष्कर्ष निकला। महाभारत में भी कहा है-

गुरुर्गरीयान् मातृतः पितृतश्चेति मे मतिः।

(शा० १०८/१७)

माता-पिता गुरु का दर्जा अव्वल है। इसकी यदि और खोज करनी है तो पाणिनि महाराज के निम्नलिखित सूत्र का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि-

विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ् (४/३/७७)

-शैषिक प्रकरण में योनि सम्बन्ध से विद्या सम्बन्ध को फर्स्ट क्लास में बैठाया है, अतः विदित होता है कि विद्या सम्बन्ध योनि सम्बन्ध से मान्य है।

ब्रह्मज्ञानी आचार्य को वेदभगवान् कितना सम्मान देते हैं, इस बात का यदि पता लगाना हो तो शुक्ल यजुर्वेद की शरण लीजिये, और ब्राह्मणग्रन्थों से उसका व्याख्यान पूछिये। देखिये, संहिता क्या सुना रही है-

प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान्
गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत्।

त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य
यस्तानि वेद स पितुः पिता सत्।।
(३२/९)

'गन्धर्व (वेदविद्या का धारण करने वाला) विद्वान् (ब्रह्मवेत्ता) उस अमृत ब्रह्म का प्रवचन-खोल-खोल कर व्याख्यान करें, जो ब्रह्म गुहा (बुद्धि या ब्रह्माण्ड) में स्थित है और जो सत् तथा आनन्दमय है। उसके तीन पदगुहा में निगूढ़ (अत्यन्त गुप्त) हैं। उन पदों को जो जान गया वह पिता का भी पिता (गुरु) है।'

ब्रह्म के तीन पदों का वर्णन करना यद्यपि इस लेख का उद्देश्य नहीं है- वेद में कई स्थानों पर ब्रह्म के पदों का और विष्णु के पाद-विक्रम का सविस्तर वर्णन है, तथापि हम इतना इस समय पर संकेत कर सकते हैं कि सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय को ब्रह्म के तीन पद कहा जाता है। अथवा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति का वर्णन किया गया है। विशेष बात, जिसके लिये यह मन्त्र उद्धृत किया गया है, वह यह है कि ब्रह्मज्ञानी महात्मा को पिता का गुरु कहा गया है। पिता का गुरु कहने से दो अर्थ निकलते हैं और दोनों अर्थों की दृष्टि से ब्रह्मज्ञानी पितादिको का गुरु कहलाने का अधिकारी है। यथा-

(क) अपने पितादि के भी गुरु ब्रह्मज्ञानी का पिता यदि ब्रह्मविद्या से शून्य है अथवा आत्मज्ञान से विमुख होकर संसारी भोगों में व्यस्त है, तो ऐसे पिता को वैराग्य का उपदेश देकर और ब्रह्मविद्या का व्याख्यान समझाकर ब्रह्मज्ञानी पुत्र उसका कल्याण कर सकता है। ऐसा करने से पिता शिष्य और पुत्र गुरु होगा। शिष्य-गुरु का सम्बन्ध पिता-पुत्र के समान है। अतः ब्रह्मज्ञानी पुत्र अपने पिता, चाचा, ताऊ, मामा, नाना, माता, नानी, चाची, ताई आदि बड़े-बूढ़ों को इस नाते 'पुत्र' कह सकता है और 'सुनो वत्स' इस प्रकार कहने का अधिकारी है। यह है ब्रह्मविद्या का प्रताप जिससे पुत्र पिता का भी पिता (गुरु) बन जाता है। यदि संदेह हो तो एक छोटा-सा प्रमाण देते हैं, सुनिये। इससे आपको पता लग जायेगा कि ब्रह्मविद्या का उपदेश करने वाला विद्वान् व्यक्ति सच्चा गुरु क्यों कर कहलाता सकता है। सामवेद के ताण्ड्य महाब्राह्मण में एक प्राचीन ऐतिहासिक घटना का वर्णन किया गया है जिसमें आंगिरस ऋषि ने अपने पिताओं को 'पुत्र' कहकर पुकारा था। गाथा इस प्रकार है।

शिशुर्वै आंगिरसो मन्त्रकृतां मन्त्रकृतासीत्। स अध्यापयन् पितृन् पुत्रकेत्यामन्त्रयत, सं पितरोऽब्रुवन्नधर्मं करोषि यो नः पितॄन् सतः पुत्रकेत्यामन्त्रयसे। सोऽब्रवीदहं वाव पिता यो मन्त्रकृदस्मीति। ते देवेष्वपृच्छन्त। ते देवा अब्रुवन्नेष वाव पिता यो मन्त्रकृदिति। तद्वै सोदजयत्।। (ताण्ड्यब्राह्मण १३/३/२४)

अंगिरा का पुत्र छोटी आयु में ही ऐसा विद्वान् हो गया कि वह मन्त्र द्रष्टा ऋषियों से आगे बढ़ गया और वेद का बड़ा रोचक और वैज्ञानिक व्याख्यान करने में प्रसिद्ध हो गया। उसने वेद का व्याख्यान करते हुए अपने पितादि बड़े वृद्धजनों को 'पुत्रों' कहकर सम्बोधन कर दिया। पितादि वृद्धजनों कोयह दुर्व्यवहार बहुत बुरा प्रतीत हुआ और सहन न कर वे कहने लगे-तू वेदवेत्ता होकर अधर्म करता है। तूने

पितादि को पुत्र कहकर सम्बोधन किया, यह न्याय संगत नहीं है। यह सुनकर आंगिरस ने कहा, 'मैं निश्चय से तुम्हारा गुरु हूँ, क्योंकि मैं मन्त्रों का द्रष्टा और व्याख्याता हूँ।' परन्तु वृद्धपार्टी को इससे सन्तोष नहीं हुआ, वे इसका ठीक-ठीक निर्णय करने के लिये देवताओं के पास गये, और सब वृत्तान्त कह व्यवस्था पूछने लगे। देवों ने पूर्वा पर विचार कर उत्तर दिया कि यह (आंगिरस) निश्चय से गुरु ही है। क्योंकि यह मन्त्रद्रष्टा वैदिक तत्वज्ञान का प्रभावशाली व्याख्यान करने वाला है। देवों के इस फैसले से आंगिरसका पक्ष सत्य सिद्ध हो गया, और उसकी जीत हुई। यह कथानक इतना प्रसिद्ध और प्रामाणिक है कि राजर्षि मनु ने भी अपने नियमों में इसको उद्धृत किया है और कहा है-

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः।
यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः।।

(मनु० २/१५६)

(ख) दूसरा अर्थ है-दूसरों के पिता जनों का पिता (गुरु) पूर्वोक्त युक्तिप्रमाण से ही यह भी सिद्ध है कि ब्रह्मज्ञानी दूसरों के वृद्धजनों का भी अपने तत्वज्ञान से उद्धार कर सकता है और इसलिये उनका भी गुरु कहलाने का अधिकारी है। एक प्रमाण इस विषय पर भी प्रकाश डाल रहा है। देखिये, अथर्ववेद की पिप्पलाद शाखा में कैसा स्पष्ट वर्णन किया गया है कि ब्रह्म में अत्यन्त श्रद्धा रखने वाले भारद्वाज, सत्यकाम, गार्ग्य, आश्वलायन, कात्यायन और भार्गव, ये छः प्रसिद्ध तत्वज्ञानी ऋषि एकत्र होकर बड़े ही विनीत भाव से महर्षि पिप्पलाद के चरणों में उपस्थित हुए, और प्रार्थना करने लगे कि 'भगवन्! हमें ब्रह्मज्ञान दीजिये, और हमारी शंकाओं का कृपा करके समाधान कर दीजिये।' महर्षि ने उनकी योग्यता देखकर ब्रह्मविद्या सम्बन्धी नियमों का प्रारम्भिक उपदेश किया और कुछ दिन बाद उनके गूढ़ प्रश्नों का भी विस्तार पूर्वक समाधान कर दिया। उस अलौकिक व्याख्यान को सुनकर उन तत्वज्ञानी ब्रह्मनिष्ठों को जो आनन्द हुआ और ब्रह्मवेत्ता महर्षि पिप्पलाद के चरणों में उनकी जो श्रद्धा उत्पन्न हुई और जिन शब्दों में उन्होंने कृतज्ञता प्रकाशित की वह इतिहास के पृष्ठों पर आज भी चमक रही है। वे स्वर्णमय शब्द ये हैं-

ते तमर्चयन्तस्त्वं हि नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयसीति। नमः परमऋषिभ्यो नमः परम ऋषिभ्यः।

(प्रश्नोपनिषद् ६/८)

उन्होंने महर्षि की श्रद्धापूर्वक पूजा की, और अत्यन्त प्रतिष्ठा करते हुए यह बोले कि 'भगवान्! आप हमारे सच्चे पिता (गुरु) हैं। भगवन्! आपने हमको अविद्यासागर से पारकर परले पार पहुँचा दिया है। आप जैसे परम ऋषियों को हमारा नमस्कार और बारम्बार नमस्कार है।'

अविद्यान्धकार से पार लगाने वाले तत्ववेत्ता को 'गुरु' मानने में भारद्वाजादि ऋषियों का प्रमाण पर्याप्त है कि ब्रह्मज्ञानी दूसरों के पितादि का भी गुरु कहलाने का अधिकारी है।

भारत में अति प्राचीन काल से ही दीक्षा-प्रणाली चली आ रही है। प्रत्येक दीक्षा में

एक-न-एक गुरु की आवश्यकता होती ही है। अस्त्र-शस्त्र और मन्त्र-दीक्षादि सभी के एक-एक गुरु होते हैं। गुरु के बिना कोई भी दीक्षा (शिक्षा) नहीं हो सकती। ऋषियों और तान्त्रिकों ने गुरु-शिष्य के विषय में नाना प्रकार के कर्तव्या कर्तव्यों का निर्णय किया है उनकी पर्यालोचना करने से विदित होता है कि जिस समय यह देश धर्मोन्नति की पराकाष्ठा तक पहुँच चुका था उस समय इस देश के मनुज गुरु को साधारण मानव नहीं समझते थे। देखिये शिवपुराण की कैलाससंहिता में गुरु भक्ति की क्या महिमा गायी है-

यथा गुरुस्तथैवेशी यथैवेशास्तथा गुरुः।
पूजनीयो महाभक्त्या न भेदो विद्यतेऽनयोः।।

अन्यच्च-

यो गुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरुः स्मृतः।
तस्माद्भि श्रीगुरोर्भक्तिर्भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी।।

(६/३/४२)

यह स्मरण रहे कि कदापि गुर्वाज्ञा और गुरुद्रोह न करना चाहिये। आपस्तम्बधर्मसूत्र साक्षी दे ही रहा है-

देवद्रोहं गुरुद्रोहं न कुर्यात् सर्वयत्नतः।
कृत्वा प्रमादतो विप्राः प्रणवस्यायुतं जपेत्।।
तस्मै न द्रुह्येत् कदाचन्

(१/१/१/१५)

जो गुरुद्रोह करते हैं और गुरु को रुष्ट करते हैं उनकी आयु, लक्ष्मी, ज्ञान का नाश हो जाता है। देखिये, क्या मीमांसा हो रही है-

कर्मणा मनसा वाचा गुरोः क्रोधं न कारयेत्।
तस्य क्रोधेन दह्यन्ते आयुःश्रीज्ञानसत्क्रियाः।।

यदि शिव रुष्ट हो जायँ तो गुरुदेव प्रसन्न कर सकते हैं, और यदि किसी हेतु गुरुजी क्षुभित हो जायँ तो उनको कोई भी प्रसन्न नहीं कर सकता। अतः उनको प्रसन्न रखने से हमारे सर्व कार्य सिद्ध हो जाते हैं और वे हमें बैकुण्ठ तक भेज सकते हैं। भागवतमाहात्म्य में उनकी कितनी प्रशंसा की है-

चिन्तामणिर्लोकसुखं सुरद्रुः स्वर्गसम्पदम्।
प्रयच्छति गुरुः प्रीतो बैकुण्ठं योगिदुर्लभम्।।

(१/१८)

प्रिय पाठको! इस लेख के प्रारम्भ में ही निवेदन किया गया था कि नवद्वारात्मक देह-गेह किसने रचा है। यह हमारे परम गुरु परमेश्वर सच्चिदानन्द कन्द की शिल्पकारी का एक अनोखा नमूना है। उनका कभी विस्मरण नहीं करना चाहिये। यही प्रतिष्ठा विद्यागुरु या दीक्षा गुरु की है। उनको आप साधारण मनुज की भाँति न समझें। सुनिये, योगशिखोपनिषद् क्या नादस्वर से पुकार रहा है-

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
न गुरोरधिकः कश्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते।।

इससे यही अनुमान लगाया जाता है कि इस भारत में हमारे पूर्वज बड़े-बड़े धुरन्धर ब्रह्मवेत्ता होते थे और उन्होंने यह देश सर्वोन्नत गिना जाता था। इसका हेतु यही है कि उनके अन्दर गुरुभाव, गुरुभक्ति, गुरुश्रद्धा और गुरुस्नेह प्रचुर मात्रा में था।

नास्ति तत्त्वं गुरोः परम्।

❊❊❊

गीता में योग, योगी और युक्त शब्दों के विभिन्न अर्थ

प्रस्तोता–अशोक दिग्विजय

योग

'योग' शब्द का प्रयोग सात अर्थों में हुआ है, जैसे–

(१) **भगवत्प्राप्ति रूप योग**–अ० ६/२३– इसके पूर्व श्लोक में परमानन्द की प्राप्ति, और इसमें दुखों का अत्यन्त अभाव बतलाया गया है, इससे यह योग परमात्मा की प्राप्ति का वाचक है।

(२) **ध्यानयोग**–अ० ६/१९– वायुरहित स्थान में स्थित दीपक की ज्योति के समान चित्त की अत्यन्त स्थिरता होने के कारण यह ध्यान योग है।

(३) **निष्काम कर्मयोग**–अ० २/४८– योग में स्थित होकर आसक्ति रहित हो तथा सिद्धि-असिद्धि में समान बुद्धि होकर कर्मों के करने की आज्ञा होने से यह निष्काम कर्मयोग है।

(४) **भगवत् शक्ति रूप योग**–अ० ९/५– इसमें आश्चर्यजनक प्रभाव दिखलाने का कारण होने से यह शक्ति का वाचक है।

(५) **भक्तियोग**–अ० १४/२६–निरन्तर अव्यभिचार रूप से भजन करने का उल्लेख होने से यह भक्ति योग है। इसमें स्पष्ट 'भक्तियोग' शब्द है।

(६) **अष्टांगयोग**– अ० ८/१२– धारणा शब्द साथ होने तथा मन-इन्द्रियों के संयम करने का उल्लेख होने के साथ ही मस्तक में प्राण चढ़ाने का उल्लेख होने से यह अष्टांगयोग है।

(७) **सांख्ययोग**–अ० १३/२४–इसमें सांख्य योग का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख है।

योगी

'योगी' शब्द का प्रयोग नौ अर्थों में हुआ है, जैसे–

(१) **ईश्वर**–अ० १०/१७–भगवान् श्री कृष्ण का सम्बोधन होने से ईश्वर वाचक है।

(२) **आत्मज्ञानी**–अ० ६/८–ज्ञान-विज्ञान में तृप्त और स्वर्ण-मिट्टी आदि में समता युक्त होने से आत्म ज्ञानी का वाचक है।

(३) **ज्ञानी-भक्त**–अ० १२/१४–परमात्मा में मन, बुद्धि लगाने वाला होने तथा 'मद्भक्त' का विशेषण होने से ज्ञानी-भक्त का वाचक है।

(४) **निष्काम कर्मयोगी**–अ० ५/११– आसक्ति को त्यागकर आत्मशुद्धि के लिये कर्म करने का कथन होने से निष्काम कर्मयोगी का वाचक है।

(५) **सांख्ययोगी**–अ० ५/२४–अभेदरूप से ब्रह्म की प्राप्ति इसका फल होने के कारण यह सांख्ययोगी का वाचक है।

(६) **भक्त**–अ० ८/१४–अनन्य चित्त से नित्य निरन्तर भगवान् के स्मरण का उल्लेख होने से यह भक्त का वाचक है।

(७) **साधक योगी**–अ० ६/४५–अनेक जन्म संसिद्धि होने के अनन्तर ज्ञान की प्राप्ति का उल्लेख है, इससे यह साधक योगी का वाचक है।

(८) **ध्यानयोगी**–अ० ६/१०–एकान्त स्थान में स्थित होकर मन को एकाग्र करके आत्मा को परमात्मा में लगाने की प्रेरणा होने से यह ध्यान योगी का वाचक है।

(९) **सकाम कर्मयोगी**–अ० ८/२५– वापस लौटने वाला होने से यह सकाम कर्मयोगी का वाचक है।

युक्त

युक्त शब्द का प्रयोग सात अर्थों में हुआ है, जैसे–

(१) **तत्वज्ञानी**–अ० ६/८–ज्ञान-विज्ञान से तृप्तात्मा होने से यह तत्वज्ञानी का वाचक है।

(२) **निष्काम कर्मयोगी**–अ० ५/१२– कर्मों का फल परमेश्वर के अर्पण करने वाला होने से यह निष्काम कर्मयोगी का वाचक है।

(३) **सांख्ययोगी**–अ० ५/८–सब क्रियाओं के होते रहने पर कर्त्तापन के अभिमान का न रहना बतलाया जाने के कारण सांख्य योगी का वाचक है।

(४) **ध्यानयोगी**–अ० ६/१८– वश में किये हुए चित्त के परमात्मा में स्थित हो जाने का उल्लेख होने से यह ध्यान योगी का वाचक है।

(५) **संयमी**–अ० २/६१–समस्त इन्द्रियों का संयम करके परमात्म परायण होने से यह संयमी का वाचक है।

(६) **संयोग सूचक**–अ० ७/२२– श्रद्धा के साथ संयोग बतलाने वाला होने से यह संयोग सूचक है।

(७) **यथायोग्य व्यवहार**–अ० ६/१७– यथा योग्य आहार, विहार, शयन और चेष्टा आदि लक्षण वाला होने से यथा योग्य व्यवहार का वाचक है।

※※※

मनीं ईश्वराचे चरण। सर्वभावे त्यास शरण।
योजे ऐसे अन्तःकरण। योग म्हणावे त्याला।

(यथार्थ दीपिका)

मन में ईश्वर के चरण हों, सब प्रकार से चित्त उन्हीं के शरण हो, ऐसा अन्तःकरण हो जाये, इसी का नाम योग है।

मनु स्मृति में इन्द्रिय संयम

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान्यन्तेव वाजिनाम्।।८८।।

विद्वान व्यक्ति चित्त को आकर्षित करने वाले विषय में भ्रमण करने वाली इन्द्रियों का संयम करने का वैसा प्रयत्न करे, जैसे इधर-उधर भागने वाले घोड़े को सारथि अपने वश में रखने का प्रयत्न करता है।

इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम्।
संनियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति।।९३।।

इन्द्रियों के विषयों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध आदि) में आसक्त होकर मनुष्य अवश्य ही दोषभागी होता है और इन इन्द्रियों को वश में करके सिद्धि को प्राप्त करता है।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।।९४।।

विषयों के उपभोग से इच्छा कभी शान्त नहीं होती, बल्कि घी से अग्नि के समान वह इच्छा फिर बढ़ती ही जाती है।

श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः।
न हृष्यति ग्लायति वा, स विज्ञेयो जितेन्द्रियः।।९८।।

जो मनुष्य प्रशंसा या निंदा की बात को सुनकर, चिकने एवं कोमल रेशमी वस्त्रादि तथा रूखे कम्बल आदि को छूकर, सुन्दर या कुरूप को देखकर, स्वादयुक्त या स्वादहीन वस्तु को खाकर और सुगन्धित या दुर्गन्धित वस्तु को सूंघकर न तो प्रसन्न होता है और न खिन्न होता है, उसे जितेन्द्रिय जानना चाहिये।

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम्।
तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेः पादादिवोदकम्।।९९।।

यदि सब इन्द्रियों में से एक भी इन्द्रिय विषयासक्त रहती है तो उससे उस मनुष्य की बुद्धि वैसे नष्ट हो जाती है, जैसे चमड़े के बर्तन (मशक आदि) में एक ही छिद्र से सब पानी बहकर नष्ट हो जाता है।

SIDDHYOG Regd. No. L. AG. 008

सितम्बर 2000

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र

सवांई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

Book-Post

श्री --

ये यथा मां प्रपद्यंते तास्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।

(गीता ४/११)

जो कोई मेरी ओर आता है, चाहे किसी प्रकार से हो, मैं उसको प्राप्त होता हूँ। लोग भिन्न-भिन्न मार्ग द्वारा प्रयत्न करते हुए अन्त में मेरी ही ओर आते हैं।

प्रकाशक एवं मुद्रक--विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिण्टिंग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लाक एवं प्रिण्टिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र सवांई, (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। फोन : 732326